समाधान

उत्तर प्रदाता
आचार्य श्री नानेश

आकलन
शान्ति मुनी

प्रकाशक
**श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
बीकानेर (राजस्थान)**

अर्थ सहयोग
**श्री साधुमार्गी जैन संघ-बम्बई
(स्थानकवासी)**

मूल्य : ~~आठ रुपये~~ (८)
संस्करण १९८४

मुद्रक
ट्रीनीटी आर्ट प्रीन्टर्स
५०-५६ सुतार चाल, बम्बई-२.
फोन : ३२ ७५ ३४, ३३ २२ ५१

प्रकाशकीय

परम श्रद्धेय समता विभूति समीक्षण ध्यान योगी, धर्मपाल प्रतिबोधक जिनशासन प्रद्योतक श्री मज्जैनाचार्य, श्री नानालालजी. म. सा जैसे अप्रतिम महापुरूष का वर्षावास प्राप्त होना निश्चित ही बम्बई साधुमार्गी सघ के लिये सौभाग्य एव गौरव का विषय है।

यह सर्व विदित है बम्बई सघ का यह वर्षावास अथक प्रयासों के उपरान्त हुआ है किन्तु यह भी सत्य है कि सघ स्थापना के इतने अल्पकाल (६ माह) में कदाचित ही किसी संघ को यह सौभाग्य - पूर्ण गौरव प्राप्त हुआ होगा।

बम्बई का यह वर्षावास अपने आपमें एक कीर्तिमान रहा है। धार्मिक साधना-आराधना के साथ तपाराधना के क्षेत्र में तो इस वर्षावास ने नये प्रतिमान प्रस्तुत किये हैं। महान तपस्विनी साधिका श्री कस्तुर कुवरजी का ८१ (इक्यासी) दिनों का तपश्चरण दीर्घ तपस्वी श्री पुष्प मुनि जी. म सा के ५३, विद्वद्वर्य श्री शातिमुनि जी म सा. के मासखमण का तपश्चरण तथा लघुवय. ६ साध्वियों के और श्रावक श्राविकाओं मे ६ कुल १२ मासखमण सपन्न हो चुके हैं। तपश्चर्याओं का क्रम अनवरत चल रहा है।

प्रसन्नता का विषय है कि पुस्तक का पूर्ण आर्थिक सहयोग बम्बई साधुमार्गी सघने प्रदान किया है। इसके लिये अ भा. सा. जैन सघ उनका आभारी है। बम्बई जैसी महानगरी में आचार्य प्रवर के चातुर्मास की सफलता जनमानस की दृष्टि में संशयास्पद थी। किन्तु नवगठित बम्बई साधुमर्गी संघ के आबाल -वृद्ध सभी सदस्यों ने तन - मन - धन से जिस उत्साह के साथ भाग लिया और ले रहे हैं, वह निश्चय ही प्रशंसनीय है।

बम्बई संघ ने इस पावन धरोहरको चिरस्थाई रूप प्रदान करने का निर्णय लिया यह इस वर्षावास की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, प्रतेक

रविवार को होनेवाले प्रश्नोत्तर का कार्यक्रम , प्रस्तुत प्रश्नोत्तर संकलन आपके कर कमलो में समर्पित कर रहे है।

हमें इसकी प्रसन्नता है, कार्य की इस तत्परता मे बम्बई साधुमार्गी संघ के सदस्योंका महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है।

अचार्य भगवान की उपकृति के प्रति कुछ भी कहना तो अपनी अल्पज्ञता ही प्रकट करना होगा। प्रश्नोत्तर का संपादन विद्वद्वर्य श्री शांति मुनिजी म. सा. ने किया है अतः मुनि श्री के साथ ही संकेत लिपिक श्री हजारी-मलजी मेहता के आभारी हैं जो प्रश्नोत्तर संकेत लिपि मे लिपिबद्ध कर यथाशीघ्र देते रहे।

पाठक जन, इन समता रस से अनस्यूत प्रश्नोत्तर का अध्ययन कर समता एवं सामायिक साधना के द्वारा जीवन का भव्य निर्माण करने में प्रयत्नशील बनेंगे यह अभीप्सा है।

गुमानमल चोरडिया
संयोजक-साहित्य समिति
अ. भा. सा. जैन संघ, बीकानेर



आध्यात्म संबंधी युगीन जिज्ञासाओं के तर्क .
संगत समाधान समता विभूति समीक्षण
ध्यानयोगी धर्मपाल प्रति बोधक
आचार्य श्री नानालाल जी म. सा. द्वारा.

दो शब्द

जिज्ञासा मानव मन का केंद्रीय भाव है. विश्व के नूतन एव पुरातन समस्त तत्वो–पदार्थो–दृश्यो एव विभिन्न क्रिया कलापो - विधि विधानो को देखकर प्रत्येक चिंतन शील प्राणि के मानस में सहज सख्यातीत जिज्ञासाएं प्रादुर्भूत हो जाती है कि ऐसा क्यो होता है ? यह सब किस लिए - किस प्रकार के है ? इनका उददेश्य क्या है, आदि.

उसमें भी अध्यात्म जगत तो जिज्ञासा का केंद्र ही है. चूंकि अध्यात्म दर्शन अथवा अध्यात्म शास्त्र हमें जीवन की चली आ रही रुढ परपराओ से एक अलग ही - स्वस्थ दिशा की ओर गति देता है, अत. उसके विषय में अधिक जिज्ञासाओ का उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं है.

जीवन स्वयं ही एक जटिल पहेली है. उसमें भी अध्यात्म - दर्शन तो सामान्य जनमानस की पहुच से दूर होने के कारण जटिलतम पहेली बना ही हुआ है. फिर इसके सूक्ष्मतम विधि -विधान आज के आम व्यक्ति को समझ में जल्दी से नहीं आते हैं विज्ञान की नूतन आविष्कृतियो ने तो अध्यात्म साधना एवं पुरातन मान्यताओ पर बडे - बडे प्रश्नवाचक चिन्ह खडे कर दिये है.

ऐसी स्थिति मे यह नितांत आवश्यक है कि कोई अध्यात्म दर्शन का तल स्पर्शी अध्येता एवं गूढ़ व्याख्याता आज के युवा मानस में स्फूरित होने वाली विविध आयामी जिज्ञासाओं

का तर्क संगत ही नहीं, विज्ञान सम्मत समाधान प्रस्तुत कर धर्म से विचलित होती हुई इस नई पीढ़ी को अध्यात्म की स्वस्थ दिशा प्रदान करें.

अतीव हर्ष का विषय है कि भारतीय दर्शनो के उच्चकोटि के विद्वान एवं प्रखरतम वाग्मी समता - विभूति जैनाचार्य श्री नानालालजी म. सा. ने इस विषय में पहल की है. आचार्य प्रवर ने अपने बंबई आगमन के दिवस ही, जिसमें बंबई महासंघ के अध्यक्ष आदि गण मान्य सज्जन उपस्थित थे, स्वागत समारोह का उत्तर देते हुए स्पष्ट शब्दो में उद्घोष किया था कि मैं बंबई महानगरी में समाज के प्रबुद्ध चेता कर्मठ बुद्धिजीवियो से संपर्क का दृष्टि कोण भी लेकर आया हूं. बंबई महासंघ ख्याति प्राप्त संघ है, यहां के कार्यकर्ता बुद्धिजीवी हैं. वे खुले दिल - दिमाग से समाज उत्थान एवं श्रमण सस्कृति की सुरक्षा के संदर्भ मे खुलकर चर्चा करें और शुद्ध सैद्धांतिक धरातल पर भावात्मक एकता के प्रयास करें. इस आव्हान को सातत्य प्रदान करने हेतु आचार्य श्री ने बंबई महानगरी के समस्त अध्यात्म प्रेमी बुद्धिजीवियो को खुला आव्हान किया हैं कि कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार की जिज्ञासा लेकर उपस्थिति हो, उसे तर्क सगत समाधान देने का प्रयास किया जायेगा. और रविवार दि. १५, २२, २९, ७ एवं ५-८-८४ तक को प्रश्नोत्तरी का कार्यक्रम आयोजित किया गया उन्हीं प्रश्नोत्तरो के संकलन - संपादन का यह विनम्र प्रयास है.

– शांति मुनि

प्रश्न आपके उत्तर आचार्य श्री के

दिनांक १५--७-८४

प्रश्न. १ : जिज्ञासु श्री पन्नालाल जी चोरडिया : कच्चे पानी में असख्य जीव बताये गये हैं, किंतु धोवन पानी और गर्म पानी में जीव नहीं होते – यह कैसे माना जाये. ?

आचार्य श्री जी द्वारा उत्तर प्रश्न बहुत सुन्दर और व्यावहारिक है इसे हर व्यक्ति को समझने की आवश्यकता है, अत कुछ विस्तृत उत्तर अपेक्षित है यह जो पानी बरस रहा है यह सब कच्चा पानी है तालाब मे, नदी मे टैंक मे, समुद्र मे, कुए मे जो पानी है, वह सब कच्चा पानी है इस कच्चे पानी मे असख्य जीव माने गये है. असख्य शब्द की आगमिक परिभाषा यह है कि जिस की गिनती नही की जा सके इस कच्चे पानी मे एकेंद्रिय जीवो के अतिरिक्त अन्य प्रकार के जीव भी पाये जाते है एकेंद्रिय असख्य जीव तो है ही. बइंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, पाच इंद्रियवाले जीव भी होते हैं और लीलन-फूलन के जीव भी होते हैं

कल्पना करिये एक घडा कच्चे पानी से भरा हो उसमे उपयुक्त वर्ग के जीव पाये जाते है एकेंद्रिय जीव इतने कोमल है कि घडे मे एक बार गिलास डालेगे तो कुछ जीव गिलास के स्पर्श से मर जाते है और सारे पानी को हिलाने, चलाने से भी अनेक जीव मर जाते हैं पानी के उस घडे मे जितने जीव है वे सब नही मरे फिर भी उन्हे कष्ट तो हुआ ही, अत उन सबकी हिंसा का पाप आपको लगा दुबारा और तीबारा पानी मे गिलास डाली या जितनी बार गिलास डाली या हाथ डाला उतना उतना पाप हर समय लगेगा क्योंकि कच्चे पानी मे पुन पुन जीवोत्पत्ति होती रहती हैं

अब रहा प्रश्न धोवन और गर्म पानी का, इसे अचित्त पानी कहते

है कच्चे पानी के जीव कोमल हैं और उनके साथ-साथ कुछ सक्त चलते फिरते जीव भी है आप कल्पना करेगे कि कच्चे पानी मे इतने जीव हमे दिखते कहा हैं ? किन्तु पानी मे अगुली डाल कर बाहर निकालेगे तो अगुली गीली दिखती है और कुछ नही दिखता लेकिन अगुली से एक बुन्द पानी नीचे आया तो खोज करने वाले वैज्ञानिको ने सूक्ष्मदर्शक यत्र लगाकर देखा उनको सैकडो जीव नजर आये उन्होने उन जीवो की फोटो ली तो ३६४५० जीव एक बुन्द मे पाये गये यह वैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्यक्ष हो गया. यह गणना तो चलते फिरते प्राणियो की हैं एकेंद्रिय जीव तो गिनती मे नही आते ये सभी जीव कच्चा पानी पीने वालो के पेट मे जाते हैं पानी छान कर पीते है तो कुछ बच जाते हैं - अन्यथा सभी जीव पीने वाले के पेट मे जाते है और अनेक प्रकार की बीमारीया पैदा करते है शरीर मे अनेक रोग घर बना लेते है कोई धार्मिक दृष्टि से नही समझते है तो भी विना छाने पानी नही पीना चाहिए जब बीमार हो जाते है तो डाक्टर कहते है कि पानी उबला हुआ पीना चाहिए मैं जब नोखा मे था वहा पोलीयो की बीमारी बहुत फैल गई थी तब सरकार की ओर से घोषणा हुई कि सब उबला हुआ पानी पीए

पानी के जीव कोमल होते हैं किसीप्रकार का कठोर या क्षार युक्त स्पर्श होने से वे मर जाते है राख से बर्तन माजे-पानी से धोये, बेसन, आटा, दूध आदि का स्पर्श होने पर वे नष्ट हो जायेगे ऐसी स्थिति मे वह पानी अचित हो जायेगा गर्म पानी करने के लिए, पानी को उबालते है तो चलते फिरते और दूसरी प्रकार के सभी जीव नष्ट हो जाते है फलत वह पानी भी अचित हो जायेगा एक बार तो हिंसा होगई, पाप लग गया अब उस पानी मे गिलास पचास बार भी डालेगे तो पानी सम्बधी जीवो का पाप नही लगेगा क्योकि वह जीव रहित हो जाता है यहा यह जिज्ञासा हो सकती है कि धोवन पानी अथवा गर्म पानी मे जीव नही रहे, किंतु उसमे हिंसा तो हो ही गई, फिर हिंसा के दोष से कैसे बचा जाय ?

इस जिज्ञासा का समाधान यह है कि धोवन पानी प्रत्येक घर मे स्वाभाविक बनता है आप गृहस्थ है, आपको भोजन पकाना पडता है, उस मे दाले चावल, सब्जी आदि धोने का प्रसग आता है, बर्तन मे माज कर धोये जाते है, यह आपके गृहस्थ जीवन की अनिवार्यता है' इससे आपके यहा सहज रूप मे धोवन बन जाता है विवेक इतना ही रखना पडता है कि उसे आप फेंके नही समाल कर रख लें। इसी प्रकार गर्म पानी भी नहाने आदि के लिए बने तो उसमे से बचे हुए का उपयोग किया जा सकता है

यह तो हुआ हिंसा - अहिंसा की दृष्टि का विवेचन स्वास्थ्य के लिए भी इसे समझ लें हमारे एक सत सपतमुनिजी को दीक्षित होने के पश्चात कुछ कम सुनाई देता था डाक्टर ने परामर्श दिया कि इस बीमारी को मिटाने के लिए औषधिया इतना काम नही देगी, जितना चावल का धोवण काम देगा उस पानी से कान की बारीक नसे मजबूत हो जाती है

एक शास्त्रीय विधान इस विषय मे और समझ ले कि धोवण पानी आज कल के मौसम वर्षावास मे ३ प्रहर तक निर्जीव रहता है और सर्दियो मे चार पहर तक पुन जीव उत्पन्न नही होते गर्मी मे पाच प्रहर तक निर्जीव रहता है उसके बाद पीयेंगे तो फिर पाप लगेगा, क्योकि इस अवधि के पश्चात् वह पुन सचित हो जाता है

प्रश्न. २. : नल से जब पानी गिरता है, उस समय पाप लगता है क्या. ?

उत्तर जिस समय नल से पानी निकल रहा है, आप उसे बाल्टी आदि किसी बर्तन मे ले रहे है, उस समय पानी के उपर से गिरने से कुछ जीवो की हिंसा तो होती ही है किंतु कष्ट तो सभी जीवो को होता है, अत आरभ जनित हिंसा का पाप तो लगता ही है, किंतु यह आपके गृहस्थ जीवन की अनिवार्यता है, अत आप इस पाप से

नही वच सकते हो, यह विवेक अवश्य होना चाहिए कि नल को बिना प्रयोजन खुला रख कर अनर्थादंड का पाप नही किया जाय अर्थात् हजारो गेलन पानी खेतो को दिया जाय वह तो आपका अर्थादण्ड–सप्रयोजन है, किंतु एक गिलास पानी व्यर्थ मे गिरा दिया तो वह अनर्थादंड का अधिक पाप का कार्य हो जायेगा

प्रश्न ३ [अ] : एकेंद्रिय जीवो को मारने पर और पंचेंद्रिय जीवो को मारने पर एक सरीखा पाप लगता है या अलग अलग ?

उत्तर अलग अलग एकेंद्रिय जीव की हिंसा के पाप मे और पचेंद्रिय जीव की हिंसा के पाप मे अतर है

प्रश्न ३ [ब] : कितना अंतर है ?

उत्तर सकल्प पूर्वक की जीने वाली पचेंद्रिय जीवो की हिंसा मे महान पाप लगता है किंतु एकेंद्रिय जीवो की हिंसा मे पचेंद्रिय जितना पाप नही लगता है इस विषय को समझने के लिए कुछ विस्तार मे जाना होगा, । हिंसा का अर्थ है किसी प्राणी का हनन करना "प्रमत्तयोगात् प्राण व्यपरोपण हिंसा" । जैन दर्शन मे दस प्राण बताये गये है – पाच इंद्रिय, मन, वचन, काया, श्वासोच्छ्वास और आयु इन दस मे जिस जिस प्राणी के जितने कम प्राण है उसकी हिंसा मे अपेक्षाकृत उतना कम पाप लगता है एकेंद्रिय के चार प्राण है और पचेंद्रिय के दस, अत एकेंद्रिय की हिंसा मे अल्प पाप है और पचेंद्रिण की सकल्पजा हिंसा मे महापाप

इसे एक व्यावहारीक रुपक से समझे – एक व्यक्ति किसी ग्रामीण को चाटा मार देता है तो उसे क्या सजा मिलेगी ? वह ग्रामीण दो–चार गाली दे देगा किंतु उसी व्यक्ति ने किसी नगर पालीका के चेअरमेन को, मिनीस्टर, चीफ मिनीस्टर अथवा प्राईमनिस्टरको चाटा

मार दिया तो क्या होगा ? उसकी सजा का अनुपात उमी क्रम से बढता जायेगा यद्यपि उपर्युक्त मभी व्यक्ति मनुष्यत्व की दृष्टि से ममान है, किंतु उनकी योग्यता - प्रतिनिधित्व मे बहुत अतर है इमी प्रकार जीव-जीव के ममान होते हुए भी एकेंद्रिय एव पचेद्रिय की हिंमा मे महान अतर है

प्रश्न ४ : यदि पंचेंद्रिय जीव की रक्षा करने के लिए असंख्य छोटे जीवो को मारने का प्रसंग आता है, तो उसको पाप लगा या नहीं ? एक मरते हुए मनुष्य को पानी पिलाया तो क्या होगा ?

उत्तर पचेंद्रिय जीव की रक्षा करने के लिए किसी ने अनेक छोटे जीव मार दिये किन्तु उसकी भावना पचेंद्रिय जीव की रक्षा करने की थी - मारने की नही लाचारी वश जो साधन उसने काम मे लिए उमसे छोटे जीव मर गये प्रथम तो कल्पना करिये पक्का पानी पिला दिया रोटी खिला दी, तो इसमे जीव मारने का प्रसग नही आया कदाचित् किमी ने कुछ पानी पिला दिया, उससे जीव मर गये, लेकीन पचेंद्रिय जीव की रक्षा तो उसने की इसमे उसे अल्प पाप लगा किंतु पचेंद्रिय की रक्षा का महान लाभ मिला क्योकि गृहस्थ मे रहनें वाले व्यक्ति की आरभ जनक हिंमा तो खुली ही है वह हिंसा नही कर रहा है तब भी उमके पाप की क्रिया उसे आ रही है अब यदि उसने उसी लगते हुए पाप मे से किसी पचेंद्रिय की रक्षा कर ली तो पुण्य कमा लिया

एक छोटा सा रुपक दू यह बबई शहर है, इसमे एक व्यक्ति को अपनी सतान की शादी करनी है शादी ६ महीने बाद होनेवाली है लेकिन बबई मे शादी करने लायक मार्वजनिक स्थान जल्दी मे नही मिलते है इसलिए उस व्यक्ति ने देखा कि ६ महीने पहले ही आज जो मकान मिल रहा है उसकी बुकिग कर लू यह मोच कर उमने शादी लायक मकान किराये पर ले लिया । उमका किराया चार

हजार या पाच हजार जो कुछ भी था, जिस रोज बुकिंग कराया उसी रोज से चालू हो गया

इसी बीच उसके पडोसी ने आकर उससे कहा कि आपके बच्चे की शादी तो ६ माह बाद होनेवाली है, मेरी लडकी की शादी कल ही है और दूसरा मकान मिल नही रहा है, आप कृपा करके आप द्वारा किराये पर लिया हुआ मकान दो दिन के लिए मुझे दे दीजिए

आपने दया करके, शुभ भावना रख कर या उसका प्रेम सपादन करने के लिए दो रोज के लिए पडोसी को मकान दे दिया, तो आपको इसके लिए नया किराया नही देना पडा उसी चालू किराये मे आपने पडोसी का प्रेम सपादित कर लिया

अब कल्पना करिये कि दो रोज तो वे निकल गये और शेषकाल मे कोई महात्मा इधर पधार गये दूसरे मकान की स्थिति नही थी सघ के मुखिया व्यक्ति, जो आपके साधर्मी थे, उन्होने आपके पास आ कर कहा कि कोई महात्मा पधार रहे है, उनको ठहराने के लिए तथा हमारे धर्म की आराधना के लिए २९ रात्री के लिए आपका मकान चाहिए आपने धर्म कार्य के लिए महिने भर के लिए मकान उनको दे दिया, तो क्या आपको नया किराया लगा ? नही लगा और आपने धार्मिक लाभ उठा लिया

अब ऐसी स्थिति आ गई कि एक बडे आचार्य का चतुर्मास यहा खुल गया सघ के प्रमुख लोग फिर आपके पास आये और कहने लगे कि सतो का चौमासा कराना है - चार महीनो के लिए मकान दीजिए आपने सतो के लिए मकान दे दिया आपका किराया चालू ही था

अब सोचिये उसी चालू किराये मे आपने पडोसी का प्रेम सपादित कर लिया, शेष काल मे सतो को ठहराने का तो लाभ

ले लिया, और सतो का चातुर्मास करवा कर साधर्मी भाइयो को खुश भी कर दिया

वैसे ही गृहस्थाश्रम के व्यक्तियो के लिए भगवान् ने अहिंसा व्रत मे बताया है - निरपराधी, निरपेक्ष चलते फिरते प्राणी की सकल्प पूर्वक हिंसा नही करना जो व्यक्ति आपका अपराध नही कर रहा है, निर्दोष है उसको नही मारना वैसे ही पृथ्वीकाय अप्काय अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, के छोटे छोटे जीव, खेती करते है तो खेती करने मे मरनेवाले जीव, अनजाने मे मर जाते है तो उनकी हिंसा आपके लिए खुली है - जैसे चालु किराये का चक्का चालू है उसी तरह से छ काय के जीवो की हिंसा चालू है उसी चालू हिंसा मे यदि आपने मरते हुए मनुष्य को पानी पिलाया तो आपकी हिंसा तो चालू है वही है कच्चे पानी की हिंसा चालू थी ही, लेकिन उस पचेंद्रिय जीव की रक्षा करने का अतिरिक्त लाभ हो गया नये सिरे से हिंसा नही हुई अभी आप यहा बैठे है कुछ भी काम नही कर रहे है फिर भी आपको हिंसा लग रही है विवेक करके त्याग करते तब तो बात अलग थी जितनी हिंसा खुली है उसका पाप आपको लगता ही है, अत पानी पिलाने मे नयी हिंसा का पाप नही लगा

प्रश्न ५. जिज्ञासु कमल खिवेसरा : साधु सचित नहीं ले सकता - किंतु दीक्षा देते समय सचित शिष्य को कैसे ग्रहण करते हैं ?

उत्तर सचित - सचित मे अतर है एक सचित ऐसा है जिसके हाथ लगने से वह मर जाता है दूसरा हाथ लगने से कष्ट पाता है एक ऐसा है जो हाथ लगने से आनद का अनुभव करता है समझ लीजीए आप सचित है - आप यह समझते होगे प्रणाम करने पर पिताजी आपके सिर पर हाथ रखें तो आप खुश होगे या नाराज होगे ? जो खुशी का कार्य है उससे हर्ष होता है अब रहा सवाल साधु

वनने का साधु कौन वनता है ? जो अपना आत्म कल्याण करना चाहता है वही गुरु के पास पहुचता है या जवरदस्ती किसी को वुलाया जाता है ? जो दीक्षा लेना चाहता है उसको जव तक दीक्षा नही दी जाती तव तक वह मन ही मन दुखी होता रहता है दीक्षा पचकाने पर प्रसन्न हो जाता है जो ससार मे रहेगा वह अनत-अनत जीवों का सहार करेगा। दूसरी वात, जव तक उसके सरक्षको की आज्ञा नही होती तव तक उसे दीक्षित नही किया जाता है सरक्षक कहते हैं कि इसे आप अपने चरणो मे ग्रहण करो, तभी उसे अहिंसक सेना मे भर्ती किया जाता है वह हाथ लगाने से अत्यत प्रमोदित होता है अत दीक्षा देकर सचित शिष्य को ग्रहण करना हिंसा नही, अहिंसा की उच्चतम आराधना है

प्रश्न ६ : जिज्ञासु महेंद्र जी मेहता. ज्ञान बड़ा है, फिर क्यों पुरुष साधु ऊपर बैठता है और साध्वियां नीचे बैठती हैं, जब कि कई साध्वियां कई साधुओ से अधिक विद्वान होती हैं ?

उत्तर ज्ञान दो तरह के है - एक भौतिक ज्ञान और दूसरा आध्यात्मिक ज्ञान इस आध्यात्मिक ज्ञान के भी दो प्रकार है - एक चारित्र के साथ परिपक्व हुआ ज्ञान और दूसरा विना चारित्र के केवल मस्तिष्क से - बुद्धि से होने वाला ज्ञान बुद्धि से होनेवाला ज्ञान सभव है, एक विद्वान मे ज्यादा हो। । एक दिन के दीक्षित साधु मे उतना ज्ञान नही होता, किंतु एक गृहस्थ मे रहनेवाला विद्वान ३२ शास्त्रो का ज्ञान साधु को करवाता है, तो क्या वह साधु उस पडित को नमस्कार करेगा अथवा अपने से उपर विठायेगा ? क्यो नही विठायेगा ? जव कि ज्ञान वडा है ? इसलिए नही विठायेगा कि वह चारित्र सपन्न नही है । आचरण से वडा - छोटा होता है आचरण मे भी विवेक हो लेकीन आचरण ऊचा और ज्ञान नीचा होने पर भी जिसका पद ऊचा होता है उस दृष्टि से उस व्यक्ति को महत्व दिया जाता है

आप कल्पना करिये कि एक पुरुष भतीजे के पद पर है और एक पुरुष चाचा के पद पर है चाचा के पद पर रहनेवाला १० वर्ष का है - उसमे विवेक नही, ज्ञान नही भतीजा २५ वर्ष का है सामायिक, प्रतिक्रमण जानता है, आचरण की दृष्टि से भी भतीजा वडा है लेकिन नमस्कार कौन करेगा ? भतीजा करेगा क्योकि दूसरा काका के पद पर है पद की दृष्टि से नमस्कार होता है और उसी दृष्टि से ऊपर नीचे वैठने का प्रसग आता है

दूसरा उदाहरण ले - एक वहू करीव ५० वर्ष की है और ३५ वर्ष की अवस्था मे उसने शील व्रत ले लिया है पति पत्नी भाई वहन की तरह रहते है वहू खूव तपस्या करती है उसकी सासूजी ६० या ६२ वर्ष की हैं सासु जी काल कर गई ससुर जी से रहा नही गया, इसलिए १६ वर्ष की लडकी के साथ शादी कर ली वह १६ वर्ष की वहिन कुछ नही जानती है मूर्ख है, क्यो कि ऐसे वुड्ढे को तो वैसी ही स्त्री मिलेगी शादी करके ससुर जी उसको घर में ले आये अव कौन पगे लगेगी या नमस्कार करेगी ? वहु तो इतनी ज्ञानवान और चारित्र सपन्न है तथा उम्र में भी वडी है किंतु फिर भी उम्र में छोटी सास के पगे लगेगी, क्योकि सास का पद वडा है

एक पिता के पहले पुत्र का जन्म हुआ फिर पुत्री का फिर पुत्र का और फिर पुत्री का तो वडा कौन हुआ ?

कल्पना करिये भगवान महावीर हम सवके पिता हैं उन्होने चार तीर्थो की स्थापना की सबसे पहले उन्होने साधु पुत्र को जन्म दिया और वाद में साध्वी को फिर श्रावक के और उसके वाद श्राविका को इस दृष्टि से साधु वडा हुआ इसलिए साध्विया चाहे ज्ञान में वडी है, चारित्र में वडी है लेकिन भगवान ने पहले साधु को जन्म दिया इसलिए साधु ऊपर वैठते है पद सवधी विवेचन मे एक और उदाहरण लीजिये । पाच सौ या हजार साधु है, जो

एक आचार्य के नेतृत्व मे है - सभी उनकी आज्ञा मे चलते है वे आचार्य उन सभी सतो पर दृष्टि डालते है कि कौन उनका उत्तराधिकारी आचार्य बनने योग्य है कई पुराने साधु है जो ५०–६० वर्षो से सयम पालन कर रहे है, फिर भी उनमें से एक भी साधु उनका उत्तराधिकारी बनने योग्य आचार्य की दृष्टि में नही आया एक साधु एक दिन का दीक्षित है आचार्य ने देखा कि यह योग्य है हालाकि ज्ञान मे औरो से कम है लेकिन ज्ञान तो सीख लेगा, आचार्य पद की क्षमता इसमे है, इसलिए उसको अपना उत्ताराधिकारी बना लिया अब आप ही बताइये हजार साधुओ मे बडा कौन हो गया ? यहा योग्यता के साथ पद का महत्व होता है

अमेरिका की एक बहुत बडी महिला जिसकी ख्याति दुनिया मे है उसने कहा है कि बहिनो को पुरुषो के समान अधिकार की बात नही सोचनी चाहिए पुरुष का हमसे ज्यादा असर है चाहे वह अर्थ की दृष्टि से समान हो सकती है, लेकिन शरीर की सरचना की दृष्टि से नारी का स्थान पुरुष से दुसरा है यह आज की पढी लिखी महिला का कथन है

पशु जगत मे भी बदरो का टोला होता है, वह एक नर बदर जो उनका लीडर होता है, उसके अडर मे रहता है और उसका अनुशासन मानता है यह कुदरत की सरचना है इसी प्रकार शारीरिक दृष्टि से भी स्त्री को द्वितीय स्थान ही प्राप्त होता है नारी पर बलात्कार हो सकता है पुरुष पर नही· क्योकि उनकी शरीर रचना ही दुसरी प्रकार की है ऐसे अनेक दृष्टियो से यह सिद्ध होता हे कि नारी को द्वितीय स्थान ही प्राप्त होता है

प्रश्न ७. : जिज्ञासु प्रीतिधाड़ीवाला : प्रतिक्रमण का सार इच्छामि ठामि है, ऐसा क्यो ?

उत्तर देखिये यह प्रश्न कॉमन नही है, सबकी समझ मे आये जैसा नही है, लेकिन धाडीवाला ने पूछ लिया इसलिए मे सक्षिप्त उत्तर दे रहा हू प्रत्येक क्षेत्र मे विस्तार का सक्षिप्ति करण होता है दस नीबू का रस कितना होता है और सत्व कितना होता है ? तो जो विशाल होता है उसका सक्षिप्त रूप अवश्य होना चाहिए प्रतिक्रमण का सक्षिप्त रूप इच्छामि ठामि मे है क्योकि इस एक छोटी सी पाटी मे वह पूरा सार भर दिया है, जो पूरे विस्तृत प्रतिक्रमण मे आता है

प्रश्न ८   जिज्ञासु श्री सूरजमली जी : श्रावक के लिए भोजन का सिध्दांत क्या महत्व रखता है श्रावक का भोजन कैसा होना चाहिए ?

उत्तर श्रावक के लिए सात्विक भोजन होना चाहिए सात्विक भोजन का तात्पर्य यह है कि महापाप का भोजन नही होना चाहिए पचेंद्रिय की घात वाला भोजन मास, मछली, अडा आदि महापाप का भोजन है यह श्रावक के लिए कत्तई अभिष्ट नही है लेकिन जो अल्प पाप की स्थिति का प्रसग है, श्रावक के लिए विशषण है वह अल्पारभी, अल्प परिग्रही होता है खेती करनेवाला श्रावक अल्पारभी होता है श्रावक अपने जीवन निर्वाह के लिए कभी खेती भी करता है आगम मे उल्लेख है कि आनदजी के पास ५०० हलवा जमीन थी एक हलवा मे ढाई बीघा जमीन होती है, अत वे १२५० बीघा जमीन मे खेती करते या करवाते थे खेती या वनस्पति से सबधित आहार श्रावक के लिए निषिध्द नही है श्रावक मास, मछली, अडा आदि हिंसक एव तामासिकता से रहित सात्विक आहार ग्रहण कर सकता है इसमे यह विवेक भी आवश्यक है कि श्रावक का भोजन तथा शक्ति नैतिकता से उपार्जित हो

प्रश्न ९. जिज्ञासु श्री धीरज कोठारी : आज की दुनिया चांद या चंद्रमा से भी आगे जा रही है तो आपने माइक पर बोलना क्यो वर्जित किया–आप माइक का प्रयोग क्यों नहीं करते ?

उत्तर माइक के बारे मे मैंने व्याख्यान मे समझा दिया था भाई कोठारी ने पुन वही प्रश्न उठाया है–मैं बहुत खुश हू इसलिए कि युवको मे चेतना आई है

भगवान ने दो तरह के मार्ग बताये–एक साधु मार्ग और दुसरा गृहस्थ मार्ग गृहस्थ मे रहनेवालो को पूर्ण हिंसा का त्याग नही है उनके लिए निरपराध निरपेक्ष चलते हुए जीवो को सकल्प पूर्वक नही मारना, नही मरवाना, हिंसा का इतना ही त्याग

लेकिन हमारे साधु जीवन के लिए भगवान ने निर्देश दिया है कि तुमको छोटे से छोटे और बडे से बडे जीव की हिंसा करनी नही, करानी नही और हिंसा करने वाले को अच्छा समझना नही मन से, वचन से और काया से । हमारे लिये कोई हिंसा खुली नही है । छोटे से छोटा और बडे से बडा जीव हमारे प्राण तुल्य है, आपेक्षिक दृष्टि से वह हमारे परिवार का सदस्य है चाहे वह पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल या वनस्पति का जीव हो परिवार का सदस्य छोटा हो या बडा उनमे भेद की बात नही होती

माइक बिजली से चलता है और बिजली मे अग्निकायिक जीव होते है उनका हनन हमारे लिये वर्जित है केवल उपदेश सुनाना ही साधु जीवन का लक्ष्य नही है उपदेश सुनानेवाले बहुत से लोग मिलेंगे आपमे जो विद्वान है, वे भी अच्छा भाषण दे सकते हैं लेकिन समस्त प्राणियो को बचा कर चलने की साधना आपकी नही हो सकती बिना माइक के साधु थोडे ही लोगो को उपदेश सुनायेगा, लेकिन जितनो को सुनायेगा वह महत्वपूर्ण होगा

मेरा रायपुर मे चातुर्मास था उस समय तोलाराम जी भूरा, जो दीपचद जी भूरा के बडे भाई थे दर्शनार्थ रेलगाडी मे बैठकर आ रहे थे रास्ते मे एक विदेशी रसियन सज्जन ने उनसे पूछा कि कहा जा रहे हो ? तो उन्होने कहा कि महात्मा जी के दर्शनार्थ रायपुर जा रहे है उसने फिर पूछा कि आपके साधु कैसे होते है ? उन्होने साधुओ के बारे मे विस्तार से बताया उस विदेशी भाई ने कहा कि क्या कोई मनुष्य इस तरह का जीवन बिताता हुआ जिदा रह सकता है ? तोलाराम जी भूरा ने कहा कि जिदा है, तभी तो हम उनके दर्शन करने जा रहे है

यदि ऐसा कोई भी व्यक्ति २४ घटे ऐसे साधुओ के पास आ कर रह जाय, साधु चाहे मौन रहे, लेकिन साधु के पास रहने से उस पर जो प्रभाव पडेगा, वह उपदेश से नही

मान लीजिए आपने उपवास पचक लिया है और सार्धमी वात्सल्य का भोज है, जिसमे करीब दस हजार लोग जीमने के लिए आये है किसी कारणवश उनको शका हो गई कि इस भोजन सामग्री मे पॉइजन–जहर है, इसलिए लोग कहने लगे कि हम नही जीमेगे जीमानेवाला कहता है कि आप जीमिये अत मे वे सहमत हो जाते है, किंतु उनकी एक शर्त है, वह यह कि धीरज भाई कोठारी भोजन करे तो हम भी भोजन कर लेगे वह नही जमते है तो हम सब भूखे जायेगे तो क्या आप जीम लेगे और दस हजार लोगो को जीमा देगे ?

श्री धीरज भाई हा, जीम लुगा

आचार्य श्री उस समय कोई आपसे पूछे कि आपके तो उपवास है फिर आप भोजन कैसे कर रहे ? तो आप नैनिकता के नाते कहेगे कि उपवास तो था लेकिन उपकार के लिए तोड दिया गृहस्थ का उपवास वृक्ष के पत्ते के तुल्य उत्तरगुण है लेकिन महाव्रत

मूल के तुल्य है आपने पत्ते को तोड दिया वह फिर आ सकता है किंतु किसी ने मूल महाव्रत को तोड दिया और यदि कोई उससे पूछे कि आप महाव्रत धारी महात्मा है ? तो वह क्या उत्तर देगा ? उसकी नैतिकता का तकाजा क्या है ? क्या वह अपने आपको पच महाव्रत धारी कह सकेगा ? यादि वह कहता है कि मैं पच महाव्रत धारी हू तो नैतिकता का अनुपालन आपने अधिक किया या उमने ? इस विषय मे आप स्वय निर्णय दे । यदि माइक आदि साधनो के प्रयोग से हमने अपने मूल महव्रतो को खडित कर दिया, तो हम साधु कहलायेगे ? या प्रचारक ? यदि हमे साधु कहलाना है तो ईमानदारी से महाव्रतो का पालन करना होगा अब आप ही निर्णय दीजिए कि हमैं प्रचार हेतु विघुत के साधनो का उपयोग करना चाहिए या नही ? धीरज–" नही, अब मै अच्छी तरह समझ गया हूँ "

प्रश्न ९. ब. जिज्ञासु एक अन्य व्यक्ति : आप प्रायश्चित ले सकते हैं. धीरज–बीच में ही–यह कैसा प्रायश्चित ?

आचार्य श्री इन भाई का प्रश्न है कि माइक पर बोल कर प्रायश्चित ले लें यादि हम अपने मूल को तोड कर प्रायश्चित लेगे, तो उसका प्रायश्चित होगा, फिर से साधु वेन जैसे वृक्ष के मूल से उड जाने पर पुन नया वृक्ष लगाना पडता है

ये वधु कह रहे है, कि परोपकार के लिए व्रत तोड देना चाहिए प्रायश्चित लें लेना चाहिए, किंतु यह स्मरण रहे कि परोपकार के लिए व्रत नही तोडा जाता है कदाचित् परोपकार के लिए व्रत तोड दिया गया तो हमे यही तो कहना पडेगा कि अब हमारे अहिसा व्रत नही है जैसे किसी के पास एक लाख रु थे, उसने उनका परापकार मे दान कर दिया अब वह अपने को लखपति नहीं कहेगा कल मैंने सरकारी मूल्य सूची तोडने का उदाहरण दिया

था इस तरह से मूल्य सूचि तोड़ने पर सरकार भी माफ नहीं करती तो मूल व्रत तोड़ने पर क्या भगवान हमको माफ कर देंगे? क्योंकि महाव्रत की साधना भगवान महावीर के द्वारा निर्दिष्ट साधना पद्धति की साधना की मूल्य सूचि के रूप में है। उसका अवमूल्यन करने का हमें कोई अधिकार नहीं है। कोई व्यक्ति मूल्य सूचि को तोड़ कर उसकी आय को परोपकार में भी क्यों न लगता हो, सरकार उसे क्षमा नहीं करेगी, ठीक यही स्थिति हमारी साधना की है। परोपकार की दृष्टि में मर्यादाओ के भंग की अनुमती हमारी साधना पद्धति नहीं देती है। यदि मुनि जीवन का उद्देश्य प्रचार प्रसार का ही होता तो प्रभु महावीर के सैंकड़ों शिष्य वैक्रियलब्धि के धारक थे। प्रभु उनसे कह कर चमत्कार दिखाकर प्रचार करवा सकते थे। किंतु प्रभु ने ऐसा नहीं किया क्योंकि वैक्रियलब्धि का प्रयोग विद्युत जैसा हिंसक नहीं होते हुए भी मुनि के लिए निषिद्ध माना गया है। जब तक आप लोगो को मुनि मर्यादाओं का ज्ञान नहीं है। तब तक तो आप कह सकते हैं कि सभी साधनों का उपयोग कर प्रचार-प्रसार करना चाहिए, किंतु ज्यों ही आपको साधु चर्चा के साधनों का ज्ञान होगा, आप खुद ही कहेंगे–'महाराज अपने महाव्रतों में ब्लैक करके उपदेश दे रहे है ऐसी स्थिति में कथन का आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा.

इसी संदर्भ में एक बात और समझ लें–साधक के व्यक्तित्व का जो प्रभाव होता है, वह उसके वक्तृत्व का नहीं यदि हमारी मर्यादाए स्थिर हैं, तो उनका प्रभाव बिना ही प्रवचन के होगा, किंतु मर्यादाओं को भंग कर उपदेश देने पर वह उपदेश स्थाइ प्रभाव नहीं डाल सकेगा

प्रश्न १०. : रतलाम मे इतने लोग इकट्ठे हुए थे, यदि किसी का बच्चा गुम जाता और माइक पर सूचना नहीं देते, तो क्या हाल होता?

उत्तर : शायद आपको मालूम होगा कि वहा पर इतने लोग इकट्ठे हुए थे उनमें से किसी का बच्चा गुम हुआ था क्या? कदाचित ऐसा हो जाए तो आप गृहस्थ हैं, खुले हैं सड़क पर कुछ भी करें, हमें क्या आपत्ति है. जिस पाडाल में कार्यक्रम हो, वहा कुछ नहीं होना चाहिए.

प्रश्न ११. : मानव समाज में रहन, सहन, आदि में जैसा परिवर्तन होता है, उसी के अनुरूप धार्मिक नियमों में परिवर्तन करने में क्या आपत्ति है?

उत्तर : आपने इतिहास पढा होगा–कितने वर्ष पुराना इतिहास मिलता है ! हजारों वर्ष पुराना इतिहास मिला है. उस समय मनुष्य की स्थिति क्या थी ? आखें कहा थी ! हृदय कहां था ! जैसे जो शरीर के मूल अग उनमें परिवर्तन कभी नहीं होता. उसी तरह, जैसा कि मैं अभी समझा चुका हूं, सत्य तीन काल में भी सत्य ही रहेगा उसमें परिवर्तन नहीं होगा. अहिंसा अहिंसा ही रहेगी, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता. मूल महाव्रतों में परिवर्तन करने पर साधु–साधु न रह कर प्रचारक बन जाएगा। हमारे लिए जो नियम बने हुए हैं उन्हें हमने नहीं बनाया, वे तीर्थंकरों के बनाये हुए हैं. उन मूल नियमों में इतने काल में भी परिवर्तन नहीं आया. यदि हम परिवर्तन करते हैं तो तीर्थंकरों के अपराधी बनते है.

प्रश्न १२. जिज्ञासु सिलोर की बहिन भवी और अभवी को ज्ञान और समकित आता है क्या?

उत्तर : अभवी अज्ञानी और मिथ्यात्वी है उसे तीन काल में भी सम्यक्त्व नहीं आ सकता है. निकट भवी को ज्ञान और समकित आता है।

प्रश्न १३. : जिज्ञासु श्री अशोक बाफना : चातुर्मास काल में जो लोग दर्शनार्थ इधर उधर जाते है, तो क्या वे ज्ञान प्राप्त करने जाते है वहां जाने वालों के द्वारा होनेवाली

हिंसा का पाप किसको लगेगा ? क्या संतों को उस हिंसा का पाप लगेगा ?

उत्तर : प्रश्न कुछ मौलिक एव सामायिक है, अत कुछ विस्तृत उत्तर दे रहा हूं जसलोक अस्पताल, बबई में बहुत बड़ा अस्पताल माना जाता है वहा पर इलाज कराने के लिए हिंदुस्तान के कोने कोने से रेल द्वारा या यातायात के अन्य साधनों द्वारा लोग आते रहते हैं. उनके आने जाने में जो जीव हिंसा लगती है, क्या वह हिंसा वहा के डाक्टरों को लगती है ? नहीं, उन्हें ही जो रोग निवृत्ति के लिए आते हैं. वैसे सभी सांसारिक प्राणियों को आरभ हिंसा तब तक लगती रहती है, जब तक वे उसका संकल्प पूर्वक प्रत्याख्यान नहीं कर लेते अत आगामिक दृष्टि से हिंसा का दोष तो लग ही रहा था.

आपकी हिंसा जन्म से ही चालू है चाहे दर्शन करने जावें यदि साधु के दर्शन के लिए जाते हैं, तो दर्शन करने से लाभ ही होता है जैसा कि भगवती सूत्र में कहा है–

'तं महाफले खलुदेवाणुप्पिया. तहारूवाणं थेराण भगवंताण नाम-गोयस्स विं सवणयाए, किंमग पुण अभिगमण-वंदण नमंसण पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए जाव गहणयाए ?

भावार्थ–हे देवानुप्रियो ! तथारूप के स्थाविर भगवंतों के नाम गोत्र के श्रवण से भी महाफल होता है, तो उनके सामने जाना, वंदना करना, नमस्कार करना, कुशल समाचार पूछना और उनकी सेवा करना यावत् उनसे प्रश्न पूछ कर अर्थों को ग्रहण करना इत्यादि बातों के फल का तो कहना ही क्या ? इस प्रकार के महाफल के प्रसंग को ध्यान में रखकर अनेकों भव्य प्राणी पंचमहाव्रत धारी संत महात्माओं के नाम-गोत्र सुनकर प्रमुदित होते हैं एव यथावसर उनके दर्शन आदि का लाभ प्राप्त कर उनके मंगल वचन श्रवण करते हैं.

वर्तमान के तर्क प्रधान युग में कुछ व्यक्ति यह भी तर्क उपस्थित करते हैं कि संतों के दर्शन को एवं उनकी मंगलमय वाणी को श्रवण

करने के निमित्त नहीं जाना चाहिए, क्योंकि आने-जाने की क्रिया में आश्रव होना स्वाभाविक है अतः संतों के दर्शन आदि के निमित्त से सत सेवा में जाने से महाफल की प्राप्ति कैसे हो सकती है !

उक्त तर्क जिज्ञासा की दृष्टि से योग्य है, पर इस प्रकार की धारणा बना लेना भयंकर भूल है तथा ऐसी प्ररूपणा करना तो उत्सूत्र प्ररूपण करना है. क्योंकि उपर जो भगवती सूत्र का पाठ दिया गया है. उसमें स्पष्ट निर्देश है कि 'अभिगमण वंदण ' अर्थात उन सत-महापुरुषों के सम्मुख चलें वदन नमस्कार करें आदि श्रावक का कर्तव्य बतलाया गया है. इस प्रकार आगम में संत महापुरुषों के आगमों में स्थान-स्थान पर श्रमण भगवंतों के अभिगमन-दर्शनार्थ जाने के उदाहरण चरितानुयोग में विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं.

भगवान महावीर अथवा उनके पट्टधर प्रथम आचार्य श्री सुधर्मा स्वामी आदि का जब पदार्पण होता, तब नागरिक जन सामूहिक रूप से उनके दर्शनार्थ उपस्थित होते थे जहां सम्राटों का संत सेवा में पहुचने का उल्लेख है वहा बतलाया गया है कि वे चतुरंगिणी सेना सहित दर्शनार्थ पहुंचते थे. चतुरंगिणी सेना हाथी, घोडे, रथ एव पैदल जब चलती थी तब उससे हिंसा होना स्वाभाविक था।

ज्ञाता–धर्म कथांग सूत्र में भगवान ने स्वयं कहा कि सेणिएराया भिभंसारेणहाए सध्यालंकर विभूसिए हस्थि खध तरगए सकोरेंट मल दामेंणं छत्तेंण धरिज्जमाणेणं सेयवर चामरे हय गय रह महया भड चड गर कलियाए चाउरंगिणीय सेणाए सद्धि संप रि. वुडे, मम 'पाय' वंदए हव्वमागच्छइ तएणं से दद्दुरे सेणियस्स रणणो एगेण आस किसोरेण वामपाएण अक्कते समाणे अत निग्घाईए कएयावि होत्था....तएण से दद्दुरे काल मासे काल किच्चा जाव सोहम्मे कप्पे ...'

अर्थात भंभसार इस अपर नाम वाला श्रेणिक राजा स्नान आदि से निवृत्त होकर सभी अंलकारो (आभूषणे) से विभूषित हो श्रेष्ठ हस्ती पर

बैठ कर कोरट नामक पुष्पों की माला से शोभित, छत्र को धारण कर भृत्यों द्वारा श्रेष्ठ श्वेत चामर ढोलये जाता हुआ, हाथी, घोडे, रथ, पैदल रूप चतुरंगीणी सेना से घिरा हुआ मेरी चरण वंदना के लिए शीघ्र आ रहा था। इधर मेढक अपनी तिव्र गति से चल कर आ रहा था, वह श्रेणिक राजा के एक किशोर अश्व के वाम पैर से आक्रांत हो गया जिससे उसकी आते टूट गयी ...यावत वह मेंढक काल करके सौधर्मकल्प विमान में... '

इस प्रकार भगवान स्वयं जानते थे कि गमनागमन से हिंसा होती है और उसका उल्लेख भी किया। किंतु दर्शनार्थ उपस्थित होने वाले को यह नहीं कहा कि संत दर्शन के निमित्त गमनागमन की क्रिया नही करनी चाहीए, तथा संतों के दर्शन करने जाने से आने जाने की क्रिया से हिंसा होगी, ऐसा जानते हुए भी राजा-महाराजा चतुरंगिनी सेना के साथ तथा अन्य गणमान्य सज्जन स्वअनुरूप साज-सज्जा के साथ संत दर्शन के निमित्त चल कर पहूचते थे।

इसी प्रकार चक्रवर्ती भरत, वासुदेव, श्रीकृष्ण एवं दशार्णभद्र, कोणिक, जितशत्रु, शतानीक, उदायन आदि बड़े-बड़े सम्राटो का चतुरंगिनी सेना सहित तीर्थंकरो की सेवा में पहूचने का उल्लेख मिलता है। उपासक-दशांग सूत्र में भी आनंद आदि श्रावको का तथा भगवती सूत्र शंख जी आदि श्रावकों का स्वअनुरूप साज सज्जा के साथ प्रभु महावीर के दर्शन करने एवं पर्युपासना करने का वर्णन मिलता है।

इतना ही नहीं. देवगण असख्य योजनों से उत्तर वैक्रिय करके वे भगवान की सेवा में पहुंचते थे उनके गमना-गमन से हिंसा तो होती ही थी तथा वे भगवान के दर्शन एवं पर्युपासना करने के निमित से ही उपस्थित होते थे। ऐसा आगम में केवल एक दो जगह ही नहीं, अनेको स्थलों पर उल्लेख मिलता है। अत. संतो के दर्शन आदि के निमित संतो की सेवा में नहीं पहुचना, ऐसा मानना आगम से सर्वथा विरुद्ध है।

इसके अतिरिक्त संत किसी से नही कहते है कि आप हमारे दर्शन हेतु आओ. आप अपनी खुशी से आते है। आपके आने स सतो को पाप क्यों लगेगा। जैसे कि जसलोक अस्पताल में आने वालों का पाप डॉक्टरों को नही लगता, जैसे शारीरिक रोगी पहुचते है वैसे ही मानसिक रोगी और आत्मिक रोगी जानते हैं कि अमुक स्थान पर जायेंगे तो हमको शांति मिलेगी। वे अपनी इच्छा से आत्मिक रोग मिटाने के लिए आते हैं। अतः साधु को पाप नहीं लगेगा। इसी प्रकार दर्शनार्थ आने वालों को भी आरभ हिंसा के अलावा धर्म लाभ ही होगा।

प्रश्न १४ : समकित लेने पर एक ही गुरु को आराध्य मानते हैं तो क्या दूसरे संप्रदाय के गुरुओं को नहीं मानना चाहिए?

उत्तर : प्रश्न आध्यात्म से संबंधित है, इसे सैद्धान्तिक दृष्टि से समझना होगा. भगवान महावीर ने हमारे समक्ष प्रत्येक तत्त्व की परिभाषा रख दी है. हम हर तत्व को उस कसोटी पर कस कर देख सकते है. समकित का लक्षण वताते हुए कहा है. अरिहन्तो महदेवो जावज्जिवाए सुसाहणी गुरुणी जिण पण्णत तसं इअसम्मतं मए गहियं. अर्थात मेरे देव अरिहंत है–सुसाधु निर्ग्रंथ मेरे गुरु है. भगवान ने यह परिभाषा दे रखी है. इसको कसोटी बना लीजिए. साधु होना ही पर्याप्त नहीं है. कोई साधु एकाकी रहता है, क्या करता है क्या नहीं करता है? कुछ ज्ञात नहीं होता है. दो साधु भी हैं और आचार्य के अनुशासन में नहीं है तो पता नहीं वे क्या करेंगे?

सुनने में आया कि मद्रास की तरफ दो साधु आये–उनके जीवन के बारे में किसी को पता नहीं था कि वे किसके शिष्य है. वे धीरे धीरे पैसा बटोरने लगे. जब श्रावकों को यह शंका हुई कि ये साधु क्या कर रहे है. लोगों ने उन पर नजर रखना आरभ किया. जब उन्होंने देखा कि पोल खुल जायगी तो पैसा ले कर दोनों वहा से

निकल गये और रेल में बैठकर कलकत्ता पहुंच गये. अतः आचार्य का नेतृत्व आवश्यक माना जाता है.

साधु संयम की अच्छी साधना करें लेकिन अच्छे आचार्य के नेतृत्व में विधि सहित नियमों का पालन करे, वही वंदनीय, पूजनीय है आप अपने पास कसौटी रखिए, जो कि शास्त्रीय है. इस कसौटी पर जो भी खरा उतरे उसे वंदन करने से समकित में दोष नहीं लग सकता है.

प्रश्न १५. : यह नियम क्यों नहीं बना लिया जाय कि धर्मस्थान में सभी मुंहपत्ति बांधकर आवे ?

उत्तर : यदि यह चिंतन वैज्ञानिक तरीके से समझ लें तो जैन धर्म की साधना पद्धति के चार चाँद लग जायें. मैं कल सामायिक की व्याख्या करते समय बोल गया था कि भगवान के समवसरण में लोग उतरासन लगा कर जाते थे. वहा जीवयुक्त पदार्थ नहीं ला सकते थे, फूलों की माला और इलायची बाहर रखी जाती थी. धर्म स्थान में आने से पहले विवेक रखना आवश्यक है. इस रूप में नियम तो उतरासन का बना ही हुआ है. आप लोग पालन नहीं करे तो यह दोष आपका है.

प्रश्न १६ : जिज्ञासु श्री गौतम . आज के जमाने में जैन धर्म लोप क्यों हो रहा है और जैन धर्म की जानकारी लोगों को क्यों नहीं है ? कई लोग अपने आपको जैन कहलाने में भी संकोच करते हैं ऐसा क्यों है ?

उत्तर : उसके कारण की खोज में जाने के लिए थोड़ा गहराई में पहुचना पड़ेगा. क्या जन्मतेही बच्चा धर्म, परिवार और समाज को जानता है ? वह नहीं समझता है – उसको समझानेवाले उसके माता–पिता है. बचपन में उसे जैसे संस्कार मिलते हैं वे अमिट हो जाते है. तो सबसे पहली कमजोरी है माता-पिता की माता-पिता

ही चरित्र का निर्माण करते हैं अतः उनका कर्तव्य है कि वे सुंदर जीवन निर्माण हो ऐसी शिक्षा दें. जब बच्चा बड़ा होता है तो उसको नयी चिज समझने की जिज्ञासा होती है धर्म स्थान पर माता के साथ जाता है तो संतो को देख कर पूछता हैं कि ये कौन हैं? यदि माता उसकी जिज्ञासा का युक्तियुक्त समाधान देती है तो उसका उत्साह बढता है यदि उसको झिड़कते हैं तो उत्साह नहीं बढेगा कभी माता-पिता उसे नास्तिक कह देते हैं तो वह धर्म स्थान पर नहीं जाता. यदि धर्म स्थान पर ले जाते है और वह कुछ पूछता है तो उससे कहें कि मुझे जितना ज्ञान था, उतना बता दिया; आगे का समाधान संत करेंगे. वहा समाधान नहीं होता है तो दूसरे स्थान पर ले जावें. इस प्रकार धार्मिक संस्कारों का क्रम चालू रहे आज के युवक बारीक बातें समझते है इस लिए जैन धर्म की बारीक बातें समझाने का सुंदर अवसर है. युवक जितना समझेंगे उतना पकडेंगे.

कुछ लोग धर्म को परलोक की चीज बता देते है और युवक कहते है कि हम तो वर्तमान की बात चाहते हैं.

ईसाई लोग रविवार को सभी बच्चों को गिरजाघरों में ले जाते है मुसलमान लोग छोटे बच्चों को कुरान शॅरीफसे धार्मिक संस्कार देते हैं. हिंदु समाज और हमारी समाज प्रयः बच्चो को पैसों की मशीन बना देना चाहते हैं। वे रोजी रोटी की जितनी आवश्यकता समझतें है उतनी धर्मकी नहीं समझते यही प्रमुख कारण है कि जैन धर्म जितनी चाहिए उतनी प्रगति नहीं कर पा रहा है। इसके अतिरिक्त आज आपकी समाज में स्वाध्याय की बहुत कमी है और इसी कारण जैन तत्वज्ञान में आपका प्रवेश नहीं हो पाता इस ज्ञान के अभाव में आपके आचरण गलत हो जाते है तो आपको अपने को जैन कहलाने में शर्म आयेगी ही.

प्रश्न १७ जिज्ञासु : जैन धर्मावलंबी इतने डरपोक क्यों है जैन कहलाना ठीक क्यों नहीं समझते ?

उत्तर . इसका भी मुख्य कारण जैन तत्त्वज्ञान का अभाव ही है. ज्ञान हो जायगा तो डरपोक पणा भाग जायेगा. जैन धर्म कायरोंका नहीं वीरों का धर्म है यह वीरता ही नहीं महावीरता सिखाता है

प्रश्न १८ · जिज्ञासु हुक्कमीचंद जी खिवसरा : आज कल के युवक तिरूपति वाला जी के वहा जाते है, जहांपांच घंटो पहले दर्शन नहीं होते पाच घंटे लगाने पर भी दर्शन होंगे तो करेंगे. साईबाब । के यहा जायेंगे तो वहा उनकी मनोकामना पूरी होती है। वे कहते कि तिरूपती और सांईबावा के वहा जा कर आया वहा मनोकामना पूरी हुई लोग कैसे मानते है कि मनोकामना पूरी हुई ?

उत्तर : वास्तविक तिरूपती बालाजी क्या हैं, यह सामान्य जनमानस नहीं समझता है। तिरूपत्ती का मूल स्वरूप आज की मान्यता से सर्वथा भिन्न है। वे एसी किन्ही मनौतियों को पूरी नही करते आज के मनुष्य की मनोकामना यह है कि धनवान बन जाऊ. यदि तिरूपती बालाजी के वहा और साईबाबा के वहा जाने से मनोकामना पूरी होती तो सबके सब धनवान हो जाते लेकिन एक माहोल हो जाता है और मनुश्य की वैसी कल्पना वन जाती है।

आचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज साहब फरमाते थे कि एक किसान को बुखार हो गया, वह भेरू जी, हनुमानजी के वहा गया मनौतियों मनाई लेकिन उसका बुखार नहीं उतरा २६ दिन बीत गये. फिर उसका ध्यान गया की मेरा बैल सयाना है, उसके पैर के नीचे से निकलू तो बुखार चला जायगा. बैल के पैर नीचे से निकला उसका बुखार उतर गया वैसे उसे २७ दिन का टाइफाइड था। औषधि चल रही थी। वह एक दिन बाद वैसे ही ठीक होनेवाला था। किंतु उस भोले बंधु ने यह प्रचार कर दिया कि मेरे बैल के नीचे से निकलने से बुखार उतर जाता है। और हजारों व्यक्ती बैल के नीचे से निकलने लगे यह अधविश्वास यही तक सीमीत नहीं रहा, बैल जब दिन भर परेशान होने लगा तो उसे

एक पिंजरे में बंद कर दिया और लोग आ आकर उस पिंजरे के चक्कर लगा जाते और बैल को नमस्कार कर जाते.

इसी तरह रायपुर के पास गुढियारी गाव में मुझे एक भाई ने बताया कि उडिसा में एक अगुली बाबा था। उसके पास जाने पर भी कुछ लोग रोग मुक्त हो गये। हजारों की भीड लगने लगी. व्यवस्था के अभाव में लोग और अधिक बीमार होकर आने लगे. अत में इस पर सरकार को प्रतिबंध लगाना पड़ा और उस बाबा को बदी बना लिया गया.

दरअसल में ज्ञान की कमी के कारण ही लोग इधर उधर की बाते सोचते है। ज्ञान की मात्रा आ जाय तो घर बैठे गगा है। यदि सही ज्ञान नही है तो मनोकामना पूरी नही होती.

दिनाक २२-७-८४
प्रातः ११ बजे

प्रश्न १९. : जिज्ञासु श्री. मनसुखलाल कटारिया : जैन धर्म की एकता हेतु, सभी संप्रदाय एक झंडे के तले आकर संगठन हेतु बहुत जोर लगाये जा रहे हैं. भाषणबाजी हो रही है. लेकिन सफलता नहीं मिल पा रही है, क्यों ?

उत्तर : प्रश्न सामायिक एव मौलिक है. प्रत्येक व्यक्ति की यह सहज भावना रहती है कि हमारी समाज सुसंगठित हो कर चले, और यह सोचना उचित भी है. किंतु सुसंगठन की आचार भूमि क्या है. यह एक विचारणीय विषय है. आज संगठन में जो सफलताएं नहीं मिल रही है, इसका मूल कारण भी आधार भूमि का असतुलन है. बिना किसी ठोस भूमिका के, ऊपर-ऊपर के प्रयास सफल नहीं हो सकते हैं असफलता का दूसरा कारण है संगठकों की कथनी-करनी में अतर. यदि समाज मे, धर्म और संप्रदाय में भावात्मक एकता लानी है तो

सभी लोग मन से, वचन से और काया से एक रूप हो जायं तो
सभी लोग मन से, वचन से और काया से एक रूप हो जायं तो सफलता. मिलने में देर नहीं लगती.

प्रश्न २०. : जिज्ञासु धर्मेन्द्र के. जैन : जैन साधु भी श्वेत वस्त्र पहनते हैं और क्रिश्चियन पादरी जिनको 'फादर' कहते हैं, वे भी श्वेत वस्त्र पहनते हैं, तो हम सब को मिल कर क्यों नहीं चर्च में जाना चाहिए ?

उत्तर : इस छोटे से बच्चे ने प्रश्न करने का साहस किया यह, प्रशसनीय है मैं उस बच्चे से कहना चाहूंगा कि यदि श्वेत वस्त्रों से ही धर्म स्थान का संबंध हो तो हम वहां जायं इसके बजाय यह भी तो हो सकता है कि सभी पादरी यहीं क्यों नहीं आ जायें ? वास्तव में धर्म सिद्धांतों में है पोषाकों में नहीं कल्पना करें दो विद्यालयों का यूनिफार्म समान हो तो क्या एक दूसरे के विद्यार्थियों को एक दूसरे विद्यालय में चले जाना चाहिए ? वास्तव में जहां पूर्ण अहिंसा, पूर्ण सत्य, पूर्ण अचौर्य, पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण अपरिग्रह संपन्न जीवन का स्वरूप है वहीं जीवन की पोषाक है वह पोषाक जो सजा लेता है और वह जिस स्थान पर मिलती है वह स्थान सब के लिए उपादेय होता है.

प्रश्न २१. : जिज्ञासु श्री उत्तमचंद जी (सिंधी समाज के प्रमुख सदस्य) : हमारे चहेते अगर हमसे दुर्बुद्धि से चलें तो हमें क्या करना चाहिए ?

उत्तर : प्रश्न आप सभी के ध्यान में आ गया होगा ? मैं कुछ स्पष्ट कर दूं आपका प्रश्न है कि हमको चाहते रहें. फिर भी उनमें दुर्बुद्धि चलती है, तो क्या करना चाहिए ? ऐसे व्यक्तियों की चाह ऊपरी चाह होती है। वे आपको ऊपर से चाहते हैं, अंदर से नहीं. इसीलिए दुर्बुद्धि से चल रहे हैं. सच्चे मन से चाहेंगे तो आपके साथ दुर्बुद्धि का व्यवहार नहीं करेंगे तथापि आप उनके साथ समभाव से

व्यवहार करेंगे तथा दुर्बुद्धि का प्रतिकार शांति के सहारे सभ्य तरीके से करेंगे तो एक न एक दिन अच्छा रिजल्ट आयगा। उनकी दुर्बुद्धि सद्बुद्धि में परिवर्तित हो जायगी. आपकी सद्भावना का प्रभाव सामनेवाले व्यक्ती पर अवश्य होगा. उसे एक-न-एक दिन अवश्य बदलना 'पड़ेगा.

प्रश्न २२ जिज्ञासु प्रीति धाडीवाल : पंडाल में बैठे व्यक्तियों की सामायिक है, अचानक आंधी तुफान व बारिस आ जाय सभी लोग भीग रहे हो व रहने के लिए कोई आसपास स्थान न हो तो उन व्यक्तियो द्वारा क्या किया जायगा?

उत्तर : प्रथम तो ऐसे स्थान पर कोई सामायिक नही करेगा जहा इस प्रकार की अव्यवस्था की संभवना है। तथा एसा प्रायः नही होता है कि आसपास में कोई स्थान न मिले। सामायिक करनेवाला पहले ही विवेक रखेगा. पहले व्यवस्था देख कर चलेगा. कदाचित् एसी स्थिति उपस्थित हो जाये तो सामायिक की समाप्ति के पश्चात् आलोचना करके प्रायश्चित लेना चाहिए।

प्रश्न २२. : जिज्ञासु श्री सुभाष नागोरी किन्ही दो राष्ट्राध्यक्षों की गलत नीति के कारण उनके बीच युद्ध होता है लेकिन युद्ध की हानि उन राष्ट्रों के नागरिकों को भी, जिनका कि कोई दोष नही है, उठानी पडती है, इसे हम किसके कर्मों का उदय समझे? क्या सभी नागरिकों ने, जिन्हें हानि पहुंचती है, पूर्वजन्म में एक साथ एक ही समान कर्म बांधे थे?

उत्तर : प्रश्न युगीन संदर्भो से अनुबंधित होते हुए भी अतीव मौलिक है। साथ ही यह कर्म सिद्धांत की व्यवस्था को भी अपने में समेटे हुए है। राष्ट्राध्यक्ष कोई अपने मन से नहीं बनते आज की जनतान्त्रिक पद्धति

में आम व्यक्ति को राष्ट्राध्यक्ष चुनने का अधिकार है। ऐसी स्थिति में राष्ट्राध्यक्ष पूरे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। अतः उसके निर्णयों का प्रभाव आम प्रजा पर होना स्वाभाविक है। कर्म सिद्धान्त ने इस व्यवस्था को सामुदायिक कर्म की संज्ञा दी है। जैसे पाच हजार व्यक्ति एक साथ कोई चलचित्र देख रहे है। उसके दृश्यो के अनुसार प्रायः सभी में एक समान भावनाएं उत्पन्न होती है और समान कर्मों का बंध हो जाता हैं, जिसका एक साथ उदय हो सकता है। मूलतः राष्ट्राध्यक्ष कोई स्वतंत्र इकाई नही है वह सामान्य जनता के प्रतिनिधित्व अधिकार से अनुबंधित है।

प्रश्न २३ : जिज्ञासु अशोक दिनेश ओस्तवाल : मानवीय जीवन क्या है और कैसे मिलता है?

उत्तर : प्रश्न अत्यत मौलिक है। इस प्रश्न को कुछ गहराई से समझने की आवश्यकता है। मानव जीवन की परिभाषा एव उसके मूल्य को नही समझने के कारण ही आज आम व्यक्ति इस बहुमूल्य उपलब्धि के लाभ से वचित-सा जी रहा है। मैंने जीवन की सक्षिप्त परिभाषा दी है "सम्यग् निर्णायक समतामयच यस्तज्जीवनम्" अर्थात् जीवन वह है जो अपने हिताहित का विवेक रख सकता हो और समतामय हो। इस परिभाषा के अनुसार मानव जीवन हमारे आत्म कल्याण के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है, जिसे संसार की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि कही जा सकती है. महर्षि व्यास ने कहा है–'नहि मानुषात्व श्रेष्ठतर हिकिञ्चित्' प्रश्न का दूसरा पहलू है पूर्व जन्म के किन अनुष्ठानों से मानवीय जीवन मिलता है? मानवीय जीवन की प्राप्ति के लिए शुभ कर्म अपेक्षित है. यहा शुभ कर्मों का तात्पर्य यह कि स्वभाव से-प्रकृति मे भद्रिक हो, छली-पाखडी न हो. स्वभाव मे–प्रकृति से विनम्र हो. बड़े बुजुर्गों का विनय आदर करे छोटों के साथ मधुर और आत्मीय भावना से चले, क्रोध, मान, माया लोभ की स्थिति से दूर रहे. अति सरल जीवन

हो इस प्रकार के दिव्य गुण अपनावे तो उसे पुन. मा
मिल सकता है.

मानवीय जीवन का सही मूल्य भी यही है कि वह इस
रहता हुआ एक दूसरे को आत्मीय भावना से देखे. जहा ऐसी
जाती है, वह मानवीय जीवन है.

**प्रश्न २४ : कोई आदमी बन कर संसार में आया उस
बाद कर्म मानव योनि के अनुकूल नहीं किये तो क्या होगा**

उत्तर : पशु योनी में चला जायगा और भी नीचे चला जायगा
किसी के साथ कपट किया धोखा किया तो नीची योनि में जायगा

**प्रश्न २५. : क्या मानव जीवन से फिर मानव जीवन
मिल सकता है?**

उत्तर : मानव बनने के लायक कर्म करे तो पुनः मानव योनि मिल
सकती है.

**प्रश्न २६ : मानव जीवन से तो मोक्ष प्राप्त है, क्या
अन्य किसी योनी से भी मोक्ष मिलता है?**

उत्तर : ऐसा दूसरा कोई जीवन नहीं है जिसमें परिपूर्ण साधना की
जा सके. जब तक दुर्जन बना रहेगा, हिंसा करता रहेगा तब तक सम
भावी नहीं बनेगा और उसके अभाव से मोक्ष भी नहीं मिलेगा.

**प्रश्न २७ : मानव जीवन मिल गया लेकिन साधु बने
बिन मोक्ष मिलता है या नहीं?**

उत्तर : मानव यदि सब के साथ समता भाव ले आता है, समता
का व्यवहार करता है और समता के अनुसार ही बोलता है तो समझिये

वह साधु जीवन में प्रवेश कर गया अब रहा सवाल परिवेश–पोषाक का, तो भी स्वतः बदल जायेगी किंतु भावात्मक साधुता आये बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है कोई भी व्यक्ति पाचवी कक्षा मे सीधी एम. ए. की डिग्री नहीं ले सकता. उसको क्रमिक रूप से अध्ययन करना पड़ेगा उसी तरह से साधना में भी क्रमिक रूप मे आगे बढना पड़ेगा, अत में जा कर मोक्ष का अधिकारी बन सकता है. ५ वीं कक्षा का छात्र चाहे कि एम ए. की डिग्री सीधी मिल जाय तो मिलेगी क्या? गृहस्थाश्रम पाचवी कक्षा जितना ही है. अतः उससे मुक्ति नहीं मिल सकती है.

प्रश्न २८. : मोक्ष के लिए क्या साधु बनना जरूरी है?

उत्तर : हा, बिना साधु बने मुक्ति नहीं हो सकती है. भाव से साधुता आयेगी तभी मुक्ति होगी. भरत महाराज का उदाहरण भी यही बताता है कि उन्हें भाव साधुता आ गई थी. तभी केवल ज्ञान हुआ. इसीलिए उन्होंने तुरत मुनि वेश धारण कर लिया था.

प्रश्न २९. : जिज्ञासु सुश्री वर्षा श्री श्रीमान : क्या कारण है कि महिलाएं खड़े हो कर ध्यान नहीं कर सकतीं है जब कि पुरुष वर्ग कर सकता है?

उत्तर : वैसे तो यह प्रश्न व्यक्तिगत हो जाता है फिर भी उत्तर दे दू महिला वर्ग इसलिए खड़े हो कर ध्यान नहीं कर सकती कि उनके शरीर की सरचना ऐसी है कि कोई व्यक्ति विपरीत या उद्दण्ड प्रकृति का हो तो खतरा आ सकता है इसलिए उनके लिए बैठे बैठे ही ध्यान करने का विधान है.

प्रश्न ३०. जिज्ञासु श्री रमेशचंद्र ब्यावर : व्यापार में स्वयं के नहीं चाहने पर भी चोरी बेईमानी करनी पड़ती है, उससे छुटकारा कैसे पाया जाय?

उत्तर : छुटकारा पाने का रास्ता यह है कि अपने जीवन को सादा बनाया जाय. ईमानदारी और सत्यनिष्ठा से कार्य करनेवाले को जितनी और जैसी उपलब्धि हो उसी के अनुरूप जीवन ढालने की कोशिश की जाय. कुरीति रिवाजों को न पनपने दें, सादगी पूर्वक जीवन बितावें. जैसे पशु पक्षी। उन्हें बेईमानी नहीं करनी पड़ती है लेकिन इसान ऐसा नहीं करता. इसलिए उसको बेईमानी और चोरी करनी पडती है वह ऐश आराम नहीं छोडना चाहता, फेसिलिटी का त्याग नहीं करना चाहता इसलिए दुविधा में रहता है यदि जीवन की आवश्यकताओं को सीमित किया जाये तो बिना बेईमानी के भी जीवन का गुजारा तो हो ही सकता है. अधिक सुविधा वाद ने ही अनैतिकता में वृद्धि की है.

प्रश्न ३१. : जिज्ञासु श्री हुक्मीचद खींवसरा : एक तरफ तो ऐसा सुना जाता है कि साधर्मी भाई की सेवा के लिए भोजन व्यवस्था पर टिकट लगाने के पूर्वाचार्य विरुद्ध थे. जबकि संघ को पूरा खर्च उठते हुए अनूठी और स्थायी स्थायी साधर्मी भाई की सेवा का और मोका मिल जाता है. दूसरी तरफ ऐसा भी सुना जाता है पूर्व में इस तरह की सुंदर व्यवस्था कभी संघ के सन्मुख आई ही नहीं थी सही बात क्या है व इस विषय में आपका मार्ग दर्शन क्या है, खुलासा करने की कृपा करें?

उत्तर : यह विषय मुख्य तार पर आपसे गृहस्थों से सबधित संत और सतीवर्ग आरम समारभ में नहीं पड़ते हैं पूर्वाचार्यों का जहा तक संबंध है, और जहा तक मेरी स्मृति में है पूर्वाचार्यों ने न हा कहा और न ना कहा सघ की सुव्यवस्था की दृष्टी से टिकट भी लगे तो पूर्वाचार्य हा ना में नही रहे आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. का चातुर्मास जयपुर हुआ था तब प्रश्न उठा था कि टिकिट लेंगे। लेकिन आचार्य श्री न हा मे थे, न ना में। साधर्मी की स्थिति के बारे में संतो

नाम से चर्चा न करे. आपको जैसी सुविधा हो वैसा सोचे. साधर्मी वात्सल्य यह आपके चिंतन का विषय है. संतो को हा ना, इसलिए नहीं कहनी है कि यदि वे हा कहते हैं तो आरभ सारभ का दोष लगता है और ना कहते है तो अतराय लगती है. आप अपना ध्यान रख कर जैसा उपयुक्त हो, सोच सकते है. यहा की क्या स्थिति है, यह आपके सोचने समझने की बात है. हमको कुछ नहीं कहें और न हमें कुछ कहना है. इसलिए संत सतीवर्ग को और पूर्वाचार्यों को हा या ना में लिप्त न करें

प्रश्न ३२. : जिज्ञासु श्री नाथा भाई : जैन बालक हिंसा की ओर जा रहे हैं इसके लिए जैन साधु मिल कर क्यों नहीं प्रयास करते ?

उत्तर : आपका प्रश्न मौलिक है, अच्छा है. यह प्रश्न साधु सतो पर कितना निर्भर करता है, यह विचारणीय है. आप साधु सतो पर उत्तरदायित्व डालते है उससे अधिक उत्तरदायित्व आपको लेना चाहिए. जो बाल बच्चे आप के घर मे जन्म लेते है शरीर से जन्म देना और बात है और संस्कारों से जन्म देना दूसरी बात है शरीर से जन्म पशु पक्षी भी देते है लेकिन वे सस्कार नहीं दे सकते. चिड़िया, कबूतर, आदि मांस का खाना नहीं खाते है. मांस खानेवाले प्राणियों के कुछ और चिन्ह होते है और नही खानेवालो के और चिन्ह होते है पशुओं और पक्षियो में भी अतर है. सिंह, भालू, कुत्ता मास खानेवाले है. ये जबान से पानी पीते है और इनके दात लंबे होते है. गाय, भैस मांसाहारी नही है. होंठ से पानी पीते है इनके दात चपटे होते है. यह कुदरती–प्राकृतिक अंतर हैं. मनुष्य गाय, बैल, भैस की तरह पानी पीता है तो मनुष्य का स्वभाव मासाहारी नही है. यह मासाहार परिस्थिति वश या गलत संपर्क से आ गया. माता पिता का कर्तव्य है कि बच्चो को अच्छे संस्कार दिये जायं. फिर वे खोटा खाना नहीं खायेंगे. माता पिता से अच्छे

संस्कार मिल जाते हैं, तो बच्चा विपरीत आचरण में नहीं आता. एक उदाहरण भोपाल का देता हूँ. भोपाल मध्यप्रदेश की राजधानी है एक वकील साहब का लड़का भीम सिंह एम्. ए में पढ़ रहा था उसके बचपन के संस्कार मास, मदिरा के नही थे. माता पिता ने भी उसे उन्नत संस्कार दिये.

एक दिन भीमसिंह के कक्षा के विद्यार्थियों ने, जो प्रायः सभी उत्तम कुल जैसे ब्राह्मण, माहेश्वरी, ओस्वाल आदि थे, सोचा कि कल रविवार है पिकनिक मनायी जाय और सभी अपने अपने घर से टिफन लेकर आवे पिकनिक में सभी विद्यार्थियों ने टिफन खोले तो कुछ में अंडे निकले। भीमसिंह को यह बात अच्छी नहीं लगी. भीमसिंह ने कहा कि यह मनुष्य का खाना नहीं है, वे इंकार करने लगे तब जबर्दस्ती से विद्यार्थी उनको खिलाना चाहते थे. उन्होंने अध्यापक को पुकारा. अध्यापक ने कहा कि अडा खा लोगे तो क्या हो जायगा? भीमसिंह ने सोचा कि यहा तो कुए भाग पड़ी हुई है. वे वहा से भाग कर अपने घर चले गये और अपने पिताजी को सारी घटना सुनाई पिता ने कानूनी कार्यवाही की और विद्यार्थी एवं स्टाफ को हाट पिलाई. जहा माता पिता से मधुर धार्मिक संस्कार मिल जाते है वहा विद्यार्थी संस्कारों के विपरीत नहीं जाता. जहां माता पिता खाली शरीर पिंड का पोषण करते हैं, पवित्र विचारों का पोषण नहीं करते वहां चरित्र गिरता है. आगे चल कर जब बच्चा स्कुल कालेजों में जाता है, वह भी अंग्रेजी माध्यम की स्कूलों में तो वहां अध्यापक अपनी संस्कृति के अनुरूप शिक्षा देते हैं आज उत्तम कुल की कहलाने वाली आपकी समाज है, उसको किसी बात की कमी नहीं है, लेकिन भावात्मक एकता की कमी है. उच्च कुल की तरह पवित्र संस्कार देनेवाली स्कूलें और कालेजों का निर्माण आप नहीं कर सकते क्या? आपमें क्षमता है लेकिन रूचि नहीं है. आपने बच्चों के संस्कार निर्माण की तरफ ध्यान नहीं दिया तो क्या स्थिति होगी? इस ओर ध्यान दें. यदि आप यह नहीं

कर सकते तो संतों से धार्मिक शिक्षण दिलावें, खुले दिल से बच्चे संतों के पास पहुंचे, प्रश्न करें, समाधान लें. संत घरों में जा कर संस्कार देने की स्थिति में नहीं है. इस दृष्टिकोण से जो संतान गलत रास्ते पर जा रहे हैं उनके माता पिता को पहले ध्यान रखना है. तथा संतों को भी अपने कर्तव्य दृष्टि से ध्यान रखना है. मूलरूप में उच्च वर्ग में मांसाहार के अधिक प्रचार का कारण संस्कारों का अभाव है.

प्रश्न २३ : जिज्ञासु श्री रतनचंद सुराणा : जैन धर्म के सब संप्रदायों द्वारा इतना आध्यात्मिक व रचनात्मक कार्य का प्रचार होते हुए भी आज की नव युवक पीढ़ी का धर्म के प्रति लगाव इतना कम क्यों है ? क्या इसमें और कोई सुधार आवश्यक है ?

उत्तर: सुधार की बहुत आवश्यकता है. कई छोटे बच्चों की धर्म के प्रति जिज्ञासा होती है, वे समझने के लिए प्रश्न उपस्थित करते हैं यदि माता पिता प्रश्नों का समाधान ठीक तरह से दे दें तो विद्यार्थी धर्म की ओर अग्रसर होते हैं लेकिन माता पिता समाधान ठीक तरह से नहीं दे सकें और अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए कहते हैं कि तुम तो नास्तिक हो गये हो तो विद्यार्थी धर्म के विरुद्ध हो जाते है और धर्म के सन्मुख आने से डर जाते हैं. यदि माता पिता उनको खुली छूट दे दें कि प्रश्न का समाधान संतों के पास जा कर लो और संत उनको योग्य समाधान दे देते हैं तो वे धर्म से विमुख नहीं होंगे. यदि संतों से उत्तर नहीं बन पड़े और वे भी कहने लग जायं कि तुम नास्तिक हो गये हो, जो ऐसे प्रश्न करते हो, तो भी विद्यार्थी धर्म से किनारा करने लग जाते है और ४ विद्यार्थी १० को और अपने साथ ले जाते है. स्कूल कालेजों के अध्यापक भी इस ओर ध्यान नहीं देते, इसलिए उनके संस्कार धर्म के विरूद्ध हो जाते है यदि संतजन उन्हें स्नेह से समझायें मार्गदर्शन दें. और अपनी अक्षमता पर सरलता पूर्वक स्पष्ट कह दें की आप और किन्हीं विद्वान

मुनियों से समाधान लें, हमारी शक्ति के अनुसार हमने बता दिया है तो युवक सहज ही उनकी नम्रता एवं सरलता से प्रभावित होंगे और धर्म के प्रति श्रद्धान्वित भी. इसके साथ ही माता-पिता बच्चोंको धर्म स्थानोंपर ले जाने में संकोच करते हैं सिनेमा में पहले ले जाते है तो उन पर सिनेमा का बुरा असर पड़ता हैं. सिनेमा एव अश्लील उपन्यास आदि के संस्कारों से आवारापन, डकैती आदि कुसस्कार पड़ते हैं, जिन्हें आप आये दिन समाचार पत्रों में देखते हैं. ये ही मूल कारण हैं उनके धर्म के विमुख होने के. जिन विद्यार्थियों के प्रश्नों का समाधान हो जाता है वे धर्म के विपरीत नहीं जाते.

प्रश्न ३४ : जिज्ञासु श्री बाबुलाल बंबकी : जैन धर्म का विज्ञान से क्या संबध है?

उत्तर : चुकि जैन धर्म स्वय वैज्ञानिक धर्म है, अतः इसका विज्ञान से संबंध अपरिहार्य है. किंतु आधुनिक विज्ञान का, जो केवल भौतिक प्रगती में ही गतिशील है, जैन धर्म से उतना ही संबंध है जितना कि वह मानव कल्याण में उपयुक्त होता है अर्थात् यदि विज्ञान मानव हित में काम करे तो जैनधर्म विज्ञान के विरूद्ध नहीं है यदि विज्ञान सहार का काम करता है हिंसाकारी अस्त्र-शस्त्र बनता है तो जैनधर्म उसके विरूद्ध है. यदि विज्ञान आत्म स्वरूप को नहीं समझता तो धर्म उसके विरूध्द है. यदि विज्ञान अपनी शक्ति पाप में न लगाकर धर्म में विश्व कल्याण में लगावे तो धर्म के विरूद्ध नहीं है.

प्रश्न ३५ : जिज्ञासु सुश्री नीति जैन पाप, पुण्य और धर्म में क्या अंतर है? मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती हैं?

उत्तर : पाप अशुभ कर्म है और पुण्य शुभ कर्म है. पाप पुण्य की स्थिती में रात दिन का अंतर है. पाप पत्थर की नाव है. और पुण्य लकडी की नाव है समुद्र पार करने के लिए पत्थर की नाव सबसे पहले छोडी जाती है और लकड़ी की नाव का सहारा लिया जाता है वैसे ही पाप को सबसे पहले छोडा जाता है और पुण्य को बाद में. क्योंकी पुण्य के परिणाम स्वरूप मनुष्यशरीर मिलता है और उसके सहारे आत्मा मोक्ष की ओर गति करती है. श्रुत धर्म, चारित्र धर्म पुण्य से प्राप्त शरीर के माध्यम से जीवन में उतर जाय तो उससे मोक्ष मिलता है, पुण्य और पाप दोनों छुटते है जब तक मोक्ष की स्थिती न हों तब तक पुण्य का सहारा लिया जाता है इसलिए पुण्य धर्म क साथ सहयोगी हैं पुण्य अन में छुटता है और पाप सबसे पहले छुटता है. यह पुण्य और पाप में अतर है. किंतु धर्म पुण्य से भिन्न है. धर्म आत्म विशुद्धि पूर्वक मुक्ति और गति प्रदान करने वाली एक प्रक्रिया हैं.

प्रश्न ३६. : जिज्ञासु श्री बंशीधर मेहता आप अद्वैतवाद में विश्वास करते हैं. या भगवान के भिन्न भिन्न रूप मानते है ?

उत्तर : भाई बंशीधर जी ने प्रश्न ज्ञान के अनुरूप रखा आत्मा का स्वरूप एक है इस दृष्टि से सब आत्माएं एक हैं. जैसे मनुष्य जाति एक है, इस दृष्टिसे अद्वैत को माना जा सकता है किंतु प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र है वैसे ही प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है, परमात्मा के तुल्य शक्ति रखती है वह विकास करती है तो एक रोज परमात्मा बन जाती है तो विभेद की स्थिति नहीं रहती इस प्रकार प्रत्येक आत्मा परमात्मा का रूप लिये हुए है अतः जैन दर्शन अपेक्षा दृष्टि से द्वैत एवं अद्वैत दोनों में विश्वास रखता है. अद्वेत की दृष्टि से सभी आत्माएं आत्मत्व की दृष्टि से एक है. और द्वैत की दृष्टि से सभी का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है

प्रश्न ३७. : नवकार मंत्र में पांच पद हैं. सिर्फ पांचवे पद में ही णमोलोए सव्व साहुणं क्यों कहा, बाकी चार में सव्व शब्द क्यों नहीं कहा. क्रिया पालने में ढीले होने पर वंदना करने का मना किया जाता है. मार्ग में कोई भी साधु मिले, वंदना करना या नहीं ?

उत्तर : इस प्रश्न को कुछ विस्तार से समझने का प्रयास करें- व्याकरण शास्त्र में समास प्रकरण में यह नियम है कि-'द्वंद्वादौ द्वंदान्तेच श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभि संबध्यते' अर्थात् द्वद्व समास में पद के आदि में और अन्त में रहा हुआ पद सर्वत्र संयुक्त होता है.

जैसे राम, श्याम, दिनेश और महेश को कहा. यह और शब्द एक जगह आया है किंतु इसका संबध सभी जगह है, जैसे राम और श्याम और दिनेश आदि... । ठीक इसी प्रकार पचम पद से आगत सव्व शब्द उपर के पदों में भी सयुक्त होता है. दूसरी बात प्रश्नकर्ता को यह ज्ञात होगा ही कि स्कूल में जहा ५० अध्यापक बैठे हों उन में प्रिंसिपल प्रोफेसर, आदि अलग अलग कोटि के अध्यापक बैठे हैं. कोई व्यक्ति उनमें से दो चार का नाम ले कर नमस्कार करेगा उसके बाद सब का नाम लेने में देर लगेगी इसलिए कहेगा कि सब गुरुजनों को नमस्कार है. अध्यापककी योग्यता रखनेवालों को नमस्कार है. जो योग्यता नहीं रखते हैं उनको नमस्कार नहीं है वैसे ही जहा साधु का रूप है वह शरीर से नहीं, पोशाक से नहीं, पोशाक तो पहचान के लिए है, लेकिन परिपूर्ण अहिंसा, परिपूर्ण सत्य, परिपूर्ण अचोर्य, परिपूर्ण ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करनेवाले हैं अर्थात् छोटे से छोटे प्राणी की जीव हिंसा नहीं करना झूठ नहीं बोलना, बिना आज्ञा के वस्तु नहीं लेना, जगत की स्त्री जाति को माता और बहिन के समान समझना अपरिग्रह में रुपये पैसे टिकिट आदि अपने पास नहीं रखना, धातु मात्र की कोई चीज नहीं रखना, चश्मे में भी धातु या लोहे की कील न हो अपरिग्रह का पूर्ण आदर्श जिसमें है वह साधु है, भगवान ने

उसे साधु बताया है. उससे विशेष योग्यता वाले साधु उपाध्याय उनसे अधिक योग्यतावाले आचार्य आचार्य से उपर बढते अरिहत होते है और उसके बाद सिद्ध बन जाते है ये पाच पद है सब मास्टरों को नमस्कार है वैसे ही सब्व साहुणं में सब साधुओं को नमस्कार है. चार पदों से अलग अलग नमस्कार कर दिया नमो लोए सव्व साहुणं पाच महाव्रतों के धारक जो साधु पद के योग्य हैं उन सब को नमस्कार है और जो साधु पद के योग्य नहीं हैं उनको नमस्कार नहीं किया साधना की पहचान के आधार पर नमस्कार है.

प्रश्न ३८. जिज्ञासु श्री अशोक बाफणा: कहते हैं कि पर्युषण पर्व व संवत्सरी शास्त्रों पर आधारित है. क्या शास्त्र हमें भिन्न भिन्न पर्युषण मनाने का निर्देश देते है या हम ही शास्त्रों को सही ढंग से नहीं समझ पाये हैं?

उत्तर: प्रश्न मौलिक है सवत्सरी का दिन आत्म शुद्धि का है, वह वर्ष में एक बार आता है. शास्त्रों में इतना उल्लेख है कि जिस दिन से चातुर्मास प्रारभ हो उस दिन से एक महीना बीस रात्रि व्यतित होने पर संवत्सरी मनावें. घड़ियों के अनुसार ४९ वा या ५० वा दिन आता है. यह शास्त्रीय उल्लेख है शास्त्रीय गणित जितना चाहिए उतना उपलब्ध नहीं हुआ. अत. अजमेर वृहत सम्मेलन में हिंदुस्तान के प्रमुख सतों ने निर्णय किया कि चातुर्मास बैठने के पश्चात चाहे दो श्रावण हो या दो भादवा हो सवत्सरी पर्व ५० वें दिन मनाना चाहिए जो कि दो श्रावण होने पर द्वितीय श्रावण एवं दो भाद्र पद होने पर प्रथम भाद्र पद में आयेगा. जिससे एक नियम हो जाय समाज एक रूप बना रहे.

भगवान महावीर की निर्वाण शताब्दी के प्रसंग से जब यह प्रश्न चला जब मैं सरदार शहर में था उस समय सपतमलजी गादिया मेरे पास आये और उन्होंने पूछा कि निर्वाण शताब्दि के सबंध में आपका

क्या कार्यक्रम है. मैंने कहा कि हमने तो पूरा जीवन ही समर्पित कर दिया है और उस पर चल रहे हैं. फिर भी मेरा एक सुझाव है कि सारा जैन समाज–स्थानकवासी, तेरा पथी, मूर्तिपूजक एवं दिगंबर सब एकरोज संवत्सरी मनाना निश्चित कर लें तो अच्छा रहेगा. इसमें जो तिथि का भेद आता है उसको सब मिल कर एक ही रोज के लिए निर्णय कर लें, तो २५०० वी निर्वाण शताब्दी की यह बहुत बड़ी उपलब्धि हो सकती है. इस पर उन्होंने पूछा कि इसमें आप क्या योगदान देना चाहते हैं ?

मैंने कहा कि मेरा पूरा योगदान मिलेगा. सारी समाज मिल कर जिस रोज भी एक सवत्सरी निश्चित कर देगी. मैं बिना किसी शर्त के उस रोज सम्वत्सरी मनाने को तत्पर हू. मुझे पूछने की भी आवश्यकता नहीं है.

उनको ऐसा लगा कि जैसे दूसरे क्षेत्र के व्यक्ति बोलते कुछ है और करते कुछ है ऐसा ही यहा होगा. इसलिए उन्होंने पूछा कि क्या यह बात शासकीय स्तर की समिती की मीटिंग जयपुर में होनेवाली है, उसमें रख दी जाय ?

मैंने कहा कि जरूर रख दीजिए, मेरी तरफ से एकरूपता है. वे जयपुर गये और वहा पर एक कमेटी राज्य सरकार की ओर से बनी हुई थी उस कमेटी के सभ्यों के सामने यह बात रखी. सब खुश हुए

उन्होने प्रयत्न किया होगा. लेकिन जब वे मेरे पास वापस आये तो मैंने पूछा कि संवत्सरी के बारे में क्या हुआ ? उन्होंने कहा कि जैसा आपने आश्वासन दिया वैसी उदारता सभी दिखाते तो एक दिन निश्चित होने में देर नहीं लगती. लेकिन कई लोग तर्क करते हैं, उंचे नीच होते हैं. इसलिए एकदिन निश्चित नहीं हो सका. मैंने कहा कि आप प्रयत्न करते रहिए मेरी तरफ से छुट है

सारा जन समाज एकदिन संवत्सरी मनाने में एक मत हो जाता है. तो यह सभी दृष्टियों से एक बड़ी उपलब्धि होगी. मैं सदा–सदा इसके लिये तत्पर रहा हूं और रहूंगा.

सरदार शहर की इस घटना के लगभग चार वर्ष पश्चात् जोधपुर वर्षावास में भारत जैन महामंडल का शिष्टमंडल एवं कलकत्ता से प्रकाशित दैनिक विश्व मित्र के संपादक आदि उपस्थित हुए, उस समय जब उन्होंने पुनः संवत्सरी एकता विषयक राय पूछी तो मैंने कहा कि मैं सरदार शहर में अपने मुक्त विचार व्यक्त कर चुका हूं इसके अतिरिक्त यदि पूरी जैन समाज द्वारा विक्रम संवत् के स्थान पर शक संवत् जो कि राष्ट्रीय संवत् है, को मान्यता दे दी जाय तो भी इस समस्या का समाधान हो सकता है. क्योंकि शक संवत ईस्वी सन् के समान तारीखों के आधार पर चलता है. जैसे वीर निर्वाण की कुछ शताब्दियों के पश्चात ही विक्रम संवत को अपनाया गया. इसी प्रकार शक संवत् को भी अपनाया जा सकता है. प्रारंभ में कुछ दिन कठिनाइयां अटपटा पन लग सकता है किंतु शनैः शनैः यह विक्रम संवत् के समान ही व्यवस्थित बन सकता है

इस पर आगंतुक सदस्य कहने लगे कि यह तो एक नया ही मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ है इस रूप में मैं मेरी स्थिति से पूरा प्रयत्न कर रहा हूं

दिनांक २९–७–८४
प्रातः ११ बजे

प्रश्न ३९ : जिज्ञासु श्री अशोक कुमार खाबिया : जैन धर्म में मनोविज्ञान का क्या स्थान है ?

उत्तर : भाई खाबिया एक चिंतनशील बुद्धि जीवी युवक हैं. अपने चिंतन के अनुरूप ही इन्होंने एक गंभीर प्रश्न प्रस्तुत किया है. स्पष्ट

शब्दों में कहू तो जैन दर्शन में जो मनोविज्ञान का स्थान है, वह इतर दर्शनों में नहीं है मनोविज्ञान का अर्थ है मन की समस्त वृत्तियों का विज्ञान, जिन्हें हम सामान्य मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान एवं परा मनोविज्ञान कहते हैं उन सब को विश्लेषणात्मक ज्ञान मनोविज्ञान है. जैन दर्शन में मतिज्ञान के जो मति, स्मृति, सज्ञा, चिंता और अभिनिबोध आदि पर्याय बताये गये हैं, उनमें उपर्युक्त तीनों प्रकार के मनोविज्ञानों का अतर्भाव हो जाता है

मनोविज्ञान शब्द भले ही हमें आधुनिक लगता है. लेकिन जैन तत्व दर्शन में मन के विज्ञान का विश्लेषण बहुत गहराई तक पहुंचा है. जैन तत्व दर्शन में बाल सस्कार से लेकर युवा चेतना एवं वृद्ध व्यवस्था तक की समस्त समस्याओं को मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में समाहित किया गया है अत यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि जैन दर्शन मनोवैज्ञानिक एव उससे ऊपर उठकर आत्म विज्ञानी दर्शन है.

प्रश्न ४०. : जिज्ञासु : मनोहर जैन : क्या अपना स्थानकवासी समाज अखिल भारतीय स्तर पर एक हो सकता है? इसमें आपका क्या योगदान ह सकता है और इसके लिए आप वर्तमान में क्या-क्या प्रयत्न कर रहे हैं?

उत्तर : प्रश्न सामायिक है. उत्तर के पूर्व जरा स्थानकवासी शब्द के अभिप्राय को समझलें. यह स्थानकवासी सज्ञा तो बाद में बन गई है, वस्तुतः स्थानकवासी समाज का मूल नाम साधु मार्गी है. इससे समग्र जैन समाज का ग्रहण हो जाता है साधु मार्ग अर्थात् सुंदर मार्ग. जो साधक साधु जीवन की भूमिका के आचार-विचार को मन, वाणी और कर्म से एक हो कर अनुसरण करता है. दुनिया से स्वल्प से स्वल्प ले कर और अधिक से अधिक जन-कल्याण हेतु समता का प्रचार प्रसार करता है. अपनी मर्यादा के अनुसार सीमा में रहता हुआ जितना योगदान कर सके करता है, वह साधक साधुमार्ग का अनुसर्ता कहलाता है. इसी का उपनाम स्थानकवासी है. अब प्रश्न

के मूल पहलू पर अर्थ–स्थानकवासी समाज की एकता की दृष्टि से पहले भी बहुत प्रयत्न हुए है और वर्तमान में भी चल रहे हैं.

संवत् २००९ में सादडी सम्मेलन में स्थानकवासी समाज के अविसंख्य प्रतिनिधि एकत्रित हुए थे उन्होंने अपनी मर्यादा के अनुकूल जो आचार सहिता सर्वानुमति मे बनाई उस पर सभी समाज के अग्रणी साधु आरूढ हो जाय तो आज भी एकीकरण सभव है मैं इस उद्देश्य को ले कर चल रहा हूं और जहा भी जाता हू प्रायः इसे दोहराता हू. समता समाज रचना के सिद्धात पर सब एक मत हो जावें तो एकता हो सकती है. इसके लिए प्रयास पहले भी चल रहे थे और आज भी चल रहे हैं. मैने इसकी भूमिका के रूप में सांवत्सरिक एकता के लिए पहल की है, जिसका स्पष्टी करण मे कई बार कर चुका हूं

प्रश्न-४१. : जिज्ञासु : श्री कोमल जैन : एक आदमी अपनी धर्मपत्नी का देहांत होने के बाद दूसरा विवाह कर सकता है और करता है जब कि जैन मान्यतावाली एक लडकी उसकी शादी के बाद एक महीने में उसका पति मर जाता है तो उसको सारी जिंदगी विधवा बन कर व्यतीत करनी पड़ती है, क्यों ? जैन धम इस विषय में क्या कहता है ?

उत्तर : प्रश्न सामाजिक होते हुए भी सामायिक है आज की परिस्थितियों एव प्रसंगों में जिज्ञासा स्वाभाविक है जिन मुक्त भावनाओं से विधुर विवाह हो रहे हैं, उस स्थिति में विधवा विवाह के सबध में प्रश्न उठना सहज है किंतु यहा विचारणीय इतना ही है कि धर्म–दर्शन इस विषय में क्या कहता है ?

इस बात को आप अच्छी तरह समझ लें कि धर्म का उद्देश्य है आत्म कल्याण की प्रेरणा देना एव उसके विधि–विधानों को प्रस्तुत करना. विवाह संबध एक सामाजिक रीति रिवाज है. अध्यात्मदर्शन

संयम-ब्रह्मचर्य की प्रेरणा देता है. व्यक्ति को अधिक-से अधिक संयमित रहना चाहिए

इस दृष्टि से धर्म न तो विधुर विवाह की अनुमति देता है और न विधवा विवाह की धर्म की दृष्टि से तो विधुर को भी पुनर्विवाह नहीं करके ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए. और विधवा को भी.

चूंकि प्रथम विवाह के समय ही विवाहकर्ता व्यक्ति नारी-पुरुष जगत् साक्षी से यह प्रतिज्ञा करता है कि संबंधित होने वाले एक व्यक्ति के अतिरिक्त संसार के समस्त पुरुष-नारियों को भाई बहिन की दृष्टि से देखूंगा. अब आप ही सोचिए कि दूसरा विवाह करनेवाला क्या भाई बहन से विवाह नहीं कर रहा है !

प्रश्न ४२. : जिज्ञासु : मीना देसरडा : यदि विश्व धर्म सम्मेलन का आयोजन विदेश यानि यूरोपीय देश में होता है और आपको जैन धर्म का प्रतिनिधित्व करने का आमंत्रण मिलता है तो आप जायेंगे या नहीं ? यदि नही जायेंगे तो क्यों ? क्या आप आपके किसी शिष्य को भेजेंगे ? या किसी नवयुवक को जो दीक्षा में नहीं है, तैयार करके भेजेंगे ?

उत्तर : प्रश्न मौलिक है. बहिन को चिंतन करना चाहिए कि जब हमने जगत साक्षी से परिपूर्ण अहिंसा का व्रत अंगीकार किया है परिपूर्ण अपरिग्रह की मर्यादा में चल रहे हैं, तो ऐसी स्थिति में भगवान् महावीर ने कहा कि तुम परिपूर्ण अहिंसक तभी, रह सकोगे. जबकि छोटे से छोटे जीव का उपमर्दन स्वयं करो नहीं, किसी से कराओ नहीं. करते को अच्छा समझो नहीं. यह हमारी प्रतिज्ञा है. इसका पालन करने के लिए हिंसा करके हम धर्म प्रचार नहीं कर सकते. इसीलिए हमने कपड़ा मुंह पर बांध रखा है. इससे वायुकाय के जीवों की रक्षा कर सकते हैं. यदि हम जीवों का, जो कि अपेक्षा से हमारे परिवार के सदस्य है, उसका

हनन करते हुए उपदेश दें तो यह संयमी जीवन में दोष लगाना होगा. विदेश जाने के लिए निश्चित रूप से हिंसा का प्रसंग आयेगा, वाहन में जाना पड़ेगा. इस स्थिति में हिंसा करके उपदेश नहीं दे सकते विदेश में जाने की बात तो बहुत बड़ी है, लेकिन जहा पर हम ठहरे हुए है. वहा से यहा पाडाल तक आना है और बरसात की छोटी छोटी बूंदें गिर रहीं हैं तो हम आ नहीं सकते क्योंकि इससे पानी के जीवों की हिंसा होती है विदेश जाने में तो बहुत बड़ी हिंसा का प्रसंग है परिपूर्ण समता भाव की साधना करनेवाला साधक अपनी मर्यादा में रह कर ही प्रचार-प्रसार कर सकता है जिन्होंने प्रण नहीं लिया है और जो विद्वान हैं, जीवादि तत्त्वों की अच्छी जानकारी रखते है, वे अपनी मर्यादा समझ कर विदेशों में प्रचार-प्रसार का कार्य कर सकते हैं. हम अपनी मर्यादा में रह कर ही प्रचार-प्रसार का कार्य कर सकते है.

प्रश्न ४३. : जिज्ञासु : श्री रायचद मगनलाल शाह : भूतकाल मा कदीपण थई एटली भयंकर हिंसा वर्तमान काल मां भारत मां तथा विश्व मां थई रही छे भारत नी मांसाहारी प्रजानी जरूरियात उपरात परदेशियों ना पोषण माटे भारत मांथी पशु हिंसा माटे निकाल करवा मां आवे छे, सरकार ऐने प्रोत्साहन आपे छे ऐने कानून थी रोकवा माटे कोई उपाय जनाववा कृपा करशो

उत्तर : आपका प्रश्न अहिंसा से सदर्भित एव मौलिक है. आज विश्व में हिंसक भावनाओं का जिस प्रकार विस्तार हो रहा है, उस स्थिति में अहिंसा प्रेमियों के मानस में तड़फन उत्पन्न होना स्वाभाविक है. रहा सवाल इसे रोकने का, तो इसके लिए व्यापक स्तर पर वातावरण बनाने की आवश्यकता है. जनता को पुण्य और पाप के अतिरिक्त मांसाहार मे होनेवाली हानियाँ समझाई जाय, शाकाहार के लाभ और वह मानव प्रकृति के अनुकूल है, यह समझाया जाय. जनता जागृत हो जाती है तो सरकार, जो जनता की है. उसे अपने आप तैयार होना पड़ेगा.

जिस देश में अहिंसा की बदौलत स्वाधीनता मिली हो उसमें हिंसा बढे यह अत्यंत विचारणीय ही नहीं चिंताजनक भी है.

प्रश्न ४४. : जिज्ञासु : श्री संपत छल्लानी : जैन धर्म सर्वोच्च धर्म होते हुए भी विश्व में नहीं फैल सका क्या इसके लिए हमारी आपसी फूट को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है ?

उत्तर : वास्तव में जैन धर्म के सिद्धात सर्वोत्तम हैं, किंतु इसका अधिक प्रचार नहीं हो पाया इसकी सर्वोत्तमता में संदेह उत्पन्न नहीं कर सकता है यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि सर्वोत्तम अथवा श्रेष्ठ तत्त्वों की उपलब्धि कम ही हुआ करती है. विश्व में कंकड, पत्थर अधिक होगे किंतु बहुमूल्य जवाहरात कितने होगे ? डालडा के मुकाबले शुद्ध घी कितनी मात्रा में मिलेगा ?

इसके उपरात भी जैन धर्म के यथोचित मात्रा में प्रचारित नहीं होने में आपसी मतभेदों को भी कारण ठहराया जा सकता है. किंतु एक कारण यह भी है, कि यह आप व्यापारियों के हाथ में आ गया, जिन्हें धनोपार्जन के अतिरिक्त धर्म के प्रचार प्रसार का अवकाश ही नहीं मिलता है.

प्रश्न ४५. : जिज्ञासु : श्री अशोक ओस्तवाल ध्यान योग और केवल ज्ञान की अवस्था में क्या फर्क है ? ध्यान योग गृहस्थी को होता है या नहीं ? होता है तो किन परिस्थितियों में और यदि नहीं तो क्यों ?

ध्यान योग एव केवल ज्ञान का सबंध साध्य साधना भाव का माना जा सकता है. ध्यान योग की साधना जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है तो केवल ज्ञान हो जाता है.

प्रश्न का दूसरा पहलू है–गृहस्थ जीवन में ध्यान योग होता है या नहीं शास्त्रोकारों ने ध्यान के आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल चार भेद

बताये हैं इनमें दो अप्रशस्त एवं दो प्रशस्त हैं. प्रशस्त ध्यानों में से धर्म ध्यान श्रावक के हो सकता है. इस अर्थ में श्रावक को ध्यान योग हो सकता है. यह एक अलग बात है कि गृहस्थ अवस्था में रहता हुआ व्यक्ति कितनी मात्रा में ध्यान योग कर सकता है, कितना आगे बढ सकता है, कितनी मात्रा में सत्य और अहिंसा का पालन कर सकता है. यह विचारणीय है. जितनी मात्रा में अहिंसा, सत्य अपरिग्रह का पालन कर सकता है उतनी ही मात्रा में वह आगे बढ सकता है गृहस्थावस्था में रहता हुआ व्यक्ति सर्वथा हिंसा का त्याग नहीं कर सकता. सर्वथा सत्य का पालन नहीं कर सकता. और इनका पालन किये बिना ध्यान योग की साधना आगे नहीं बढ सकती गृहस्थाश्रम में रहता हुआ व्यक्ति ध्यान योग की साधना कर सकता है लेकिन केवल ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता. एम ए. की डिग्री लेनी है तो उसके लिए उतना ही अध्ययन करना होगा. पांचवीं कक्षा पास करनी है तो पांचवीं कक्षा का अध्ययन करना होगा. और वह क्रमश आगे बढता हुआ एक दिन एम. ए. की डिग्री भी ले सकेगा. इसी प्रकारगुणस्थान की अपेक्षा से श्रावक की पांचवी कक्षा से उपर उठकर साधुत्व की उच्च कक्षाओं में प्रवेश कर ही केवल ज्ञान हो सकता है

प्रश्न ४६. : ज्ञान केवल परिपूर्ण अहिंसा के बिना नहीं हो सकता तो भरत चक्रवर्ती को कैसे हो गया ?

उत्तर : भरत चक्रवर्ती की ज्ञान की धारा अतर मुहुर्त में अहिंसा के साथ आगे बढती गई और वे १३ वें गुण स्थान में आ गये केवल ज्ञान होने के बाद फिर वे गृहस्थ में नहीं रहे वैसी पराकाष्टा की स्थिति आने पर ही केवल ज्ञान होगा. भरत के साथ जब तक राज्य की व्यवस्था थी तब तक वे केवल ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके. उनके हाथ की अगुली मे अंगूठी गिरी, मोह ममत्व छूटा. शरीर का भी ममत्व छूटा समता प्राप्त हुई, और वे भाव से साधु हो गए. वैसी स्थिति आने पर ही केवल ज्ञान हुआ.

प्रश्न ४७. : जिज्ञासु श्री राजमल खटोड़ : महावीर भगवान के समय से ही आज तक साध्वी जी की संख्या अधिक है, जब कि संत समुदाय कम है, इसका क्या कारण है !

उत्तर : भाई राजमल जी को मालूम है कि बहिनों का हृदय वात्सल्य भावना से अधिक परिपूर्ण होता है धर्म का संबंध हृदय की सरलता एव निर्मलता से अधिक होता है और वह सरलता—नारी हृदय में अधिक पाई जाती है इसीलिए वे धर्म भावनाओं में भी आगे रहती हैं. बहिनों में कोमलता और वात्सल्य भावकम हो जाय और पुरुषों में अधिक हो जाय तो पुरुष आगे नंबर ले सकते हैं. पुरुषों में प्रायः वैसा वात्सल्य भाव नहीं है पुरुषों में कठोरता है बहिनों में सम भाव की मात्रा भी अधिक होती है. ये अपनी साधना के प्रति जागरूक रहती है. उनका स्वभाव वात्सल्य भाव से युक्त रहता है. पुरुष बहिनों जैसा वात्सल्य भाव नहीं रख सकते, इसलिए बहिनें धर्म ध्यान में आगे रहती हैं, आध्यात्मिक जीवन में भी उनसे अधिक सहयोग मिलता है, यही कारण है कि उनकी सख्या साधुओं से अधिक है.

प्रश्न ४८. जिज्ञासु : श्री. एस. एस. जैन : क्या साधु समाज देश और समाज के पहलुओं से परे रह सकता है ? अगर नहीं तो वह किस हद व सीमा तक अपने आप को सम्मिलित कर सकता है !

उत्तर : वकील साहब का प्रश्न मौलिक है. साधु, जिसने पूर्ण साधुता को समझा है, जो परिपूर्ण मर्यादा में रहते हुए व्यक्ति, समाज, परिवार और राष्ट्र में भावात्मक एकता और जन कल्याण के कार्यों में प्राण फूंक सकता है । वह समाज एवं देश से अलग नहीं रहता है. वह एक सीमा हुआ समाज से अनुबद्ध रहता है. तथापि वह व्यक्तिगत जीवन की दृष्टि से अलग भी होता है एक बगीचे या फुलवारी में पुष्प अपने आप में सुगध भर लेता है वह अपनी स्थिति से अलग हट कर प्रसार के

लिए नहीं जाता, किसी समाज या पार्टी के बीच में नही जाता. जिसको भी सुगंध और आक्सीजन की आवश्यकता है वह उसके समीप जा कर आक्सीजन ले कर अपने प्राणों की सुरक्षा कर सकता है वह पुष्प जिस प्रकार व्यक्ति समाज और पार्टी को सुगंध का दान देता है, प्राण–दान देता है. वह समाज, व्यक्ति और राष्ट्र से परे होते हुए भी अपने मौलिक स्वरूप के साथ सबंधित है। वैसे ही संत समाज पूर्ण सुगध से भरा हुआ है वह अपनी आत्मिक साधना में रत रहता है समता मय सुगंध युक्त है. उनके पास जानेवालों में शाति का सचार होता है इस प्रकार सत वर्ग समाज से सबंधित भी है और अलग भी!

प्रश्न ४७ : जिज्ञासु: श्री कुशलराज लूंकड: जैसा कि केवली भगवान किसीव्यक्ति का भविष्य बतला देते है, जैसा कि कुछ महान व्यक्तियों का मोक्ष जाना निश्चित है, उसी प्रकार हमारा भी भविष्य पूर्व निश्चित है तो फिर हमें पुरुषार्थ करने और धर्म करने की क्या जरूरत है?

उत्तर: आपका प्रश्न अच्छा है. केवलज्ञानियों की बात बाद में लेना. पहले आप चिंतन करिये कि भोजन करने से भूख शात होती है और भोजन से शरीर को ताकत मिलती है यह सुनिश्चित है. भोजन करेंगे तो भूख मिटेगी. कोई यह सोचे कि मुझे हाथ पैर नहीं हिलाने है, चुपचाप कमरे में बैठ जाऊं, वह चुपचाप बैठ जाएगा तो अन्न अपने आप भूख मिटा देगा या हाथ पैर हिलाने पड़ेगे? पुरूषार्थ करना पड़ेगा! भूख मिटाने की ताकत अन्न में है, लेकिन हाथ पैर हिला कर भोजन करना पड़ेगा. कदाचित हाथ पैर नहीं हिलावे और माता से भोजन देने के लिए कहे तो माता का हृदय वात्सल्य भावना से ओत प्रोत होता है, अत: वह सीधा भोजन ला कर पुत्र के सामने रख दे तो क्या इतने मात्र से उसकी भूख मिट जायेगी या पुत्र को कष्ट करना पड़ेगा. और, थाली में से उठा कर मुंह में रखना पड़ेगा? कदाचित् वह स्वयं नवाला मुंह में नहीं ले और माता से कहे, माता अपने हाथ से

ठाकर कवा उसके मुंह में रखने को तैयार हो जाय तो भी मुं
का पुरुषार्थ तो उसको ही करना पड़ेगा. यदि मुह में कवा चला
चबाने का पुरुषार्थ तो उसे ही करना पड़ेगा चबाने का पुरुषार्थ
आतरिक जठाराग्नि पुरुषार्थ करेंगी तभी रस बनेगा—और रस
ताकत आयेगी

वही स्थिति आध्यात्मि जीवन के साथ है. केवल ज्ञानी पदा
यथार्थ स्वरूप का अवलोकन करते है. वे यह स्पष्ट देखते—जानते है
अमुक व्यक्ति अमुक पुरुषार्थ करेगा, उसे अमुक अमुक उपलब्धि होगी
अमुक व्यक्ति पुरुषार्थ हीन हो कर बैठा रहेगा, उसे कुछ भी प्राप्त
नहीं होगा. अतः उनके ज्ञान से हमारा पुरुषार्थ प्रभावित नहीं होता है.
हमें क्या पता कि केवलियों की दृष्टि में हमारा पुरुषार्थी जीवन भुलक
रहा है या अपुराषार्थी? अतः पुरुषार्थ ही सब कुछ है. आप पुरुषार्थ से
शक्ति का विकास कर सकते हैं. पुरुषार्थ ही भाग्य बनाता है और
पुरुषार्थ से ही शुभाशुभ फल मिलता है. इसलिए भाग्य भरोसे नहीं रह
कर पुरुषार्थ एवं धर्म साधना करने की आवश्यकता है. क्योंकि समस्त
तीर्थंकरों ने भी पुरुषार्थ पर ही बल दिया है—यथा उत्थान, कर्म, बल,
वीर्य पुरुषाकार पराक्रम.

प्रश्न ५०.: जिज्ञासु श्री अनिल उत्तमचंद जी खिवसरा.
आत्मा इस जीवनमें जो कर्म बांधता है वे सब कर्म इसी जीवन में क्यों नहीं भोगता है? उसे अगले जन्म में या और भी अगले जन्म में क्यों भोगना पड़ता है?

उत्तर: कर्म बंध के संबंध में एक बात समझ लें कि कर्मों का बंधन
भावनाओं के अनुसार होता है. उनकी काल मर्यादा का निधीकरण
कषाय के तारतम्य पर निर्भर है. यदि सामान्य कषाय के अनुसार कर्म
बंध हुआ है तो उसकी स्थिति अल्प कालिक होगी और तीव्र कषाय
के द्वारा दीर्घ कालिक, जो कि अनेक जन्मों तक भी टिक सकती

है. एक व्यावहारिक उदाहरण लें-किसान, एरड, मक्का, जवार, गेहूं, बाजरा आदि बोता है उसका फल अल्पकाल में ले सकता है, लेकिन एक व्यक्ति आम का बीज बोता है या आम का वृक्ष लगाता है उसको फल अनेक वर्षों बाद मिलता है. वैसे ही जीवन में जिस प्रकार के कर्म जिसने बांधे हैं, जिन भावों के साथ बधे हैं उनका फल भी उसको आगे चल कर मिलता है निकाचित कर्मों का फल अनेक जिंदगियों के बाद भी भोगना पड़ता है

प्रश्न ५१ : जिज्ञासु श्री. राजेंद्र डूंगरवाल : वैज्ञानिकों का दावा है कि वे चंद्रमा पर पहुचें है, लेकिन शास्त्रों में मेरूपर्वत की ऊंचाई उससे ज्यादा है. कौन सही है और कैसे ?

उत्तर यह प्रश्न युगीन एवं आगामिक सदर्भों से अनुबंधित है. इस विषय में एक बात समझ लेना आवश्यक है कि जैनागमों का प्रमुख प्रतिपाद्य मुक्ति मार्ग है भूगोल-खगोल संबधि वर्णन वहां प्रासगिक रूप में ही हुआ है. चूंकि इस वर्णन से आत्म साधना अथवा कल्याण का कोई सीधा संबंध नहीं है अतः इस विषय पर अधिक चर्चा निरर्थक ही होगी. स्थूल रूप से आगमों में चंद्र को सूर्य से ऊपर माना गया है और अनेक चद्र एवं अनेक सूर्य माने गए है किंतु आज आगमिक गणित की पुजी उपलब्ध नहीं है. इधर विज्ञान भी अनेक चंद्र मानने के पक्ष में आ गया है. किंतु यह स्मरण रहे कि विज्ञान सदा परिवर्तन शील रहा है. उसकी नई खोजें पुरानी को नकारती जाती हैं. अतः उसे भी एकात सत्य मान लेना भारी भूल होगी.

चंद्र पर पहुंचने के विषय में भी अभी सभी वैज्ञानिक एक मत नहीं हुए है. कोई उसे चंद्र मानते हैं और कोई नहीं.

सन् १९७५ में उदयपुर में एक सौर वेधशाला का उद्घाटन करने के लिए तत्कालीन उप-राष्ट्रपति बी. डी. जत्ती आये थे, उम

उठाकर कवा उसके मुंह में रखने को तैयार हो जाय तो भी मुंह
का पुरुषार्थ तो उसको ही करना पड़ेगा. यदि मुंह में कवा चला
चबाने का पुरुषार्थ तो उसे ही करना पड़ेगा चबाने का पुरुषार्थ
आतरिक जठराग्नि पुरुषार्थ करेंगी तभी रस बनेगा—और रस बन
ताकत आयेगी

वही स्थिति आध्यात्मि जीवन के साथ है. केवल ज्ञानी पदार्थ
यथार्थ स्वरूप का अवलोकन करते है. वे यह स्पष्ट देखते—जानते है।
अमुक व्यक्ति अमुक पुरुषार्थ करेगा, उसे अमुक अमुक उपलब्धि होगी
अमुक व्यक्ति पुरुषार्थ हीन हो कर बैठा रहेगा, उसे कुछ भी प्राप्त
नहीं होगा. अतः उनके ज्ञान से हमारा पुरुषार्थ प्रभावित नहीं होता है.
हमें क्या पता कि केवलियों की दृष्टि में हमारा पुरुषार्थी जीवन मुलक
रहा है या अपुराषार्थी? अतः पुरुषार्थ ही सब कुछ है. आप पुरुषार्थ से
शक्ति का विकास कर सकते हैं. पुरुषार्थ ही भाग्य बनाता है और
पुरुषार्थ से ही शुभाशुभ फल मिलता है. इसलिए भाग्य भरोसे नहीं रह
कर पुरुषार्थ एवं धर्म साधना करने की आवश्यकता है. क्योंकि समस्त
तीर्थंकरों ने भी पुरुषार्थ पर ही बल दिया है—यथा उत्थान, कर्म, बल,
वीर्य पुरुषाकार पराक्रम.

प्रश्न ५० : जिज्ञासु · श्री अनिल उत्तमचंद जी खिवसरा
आत्मा इस जीवनमें जो कर्म बांधता है वे सब कर्म इसी जीवन में क्यों नहीं भोगता है? उसे अगले जन्म में या और भी अगले जन्म में क्यों भोगना पड़ता है?

उत्तर : कर्म बंध के संबंध में एक बात समझ लें कि कर्मों का बंधन
भावनाओं के अनुसार होता है. उनकी काल मर्यादा का निधीकरण
कषाय के तारतम्य पर निर्भर है. यदि सामान्य कषाय के अनुसार कर्म
बंध हुआ है तो उसकी स्थिति अल्प कालिक होगी और तीव्र कषाय
द्वारा दीर्घ कालिक, जो कि अनेक जन्मों तक भी टिक सकती

है. एक व्यावहारिक उदाहरण लें–किसान, एरड, मक्का, जवार, गेहूं, बाजरा आदि बोता है उसका फल अल्पकाल में ले सकता है, लेकिन एक व्यक्ति आम का बीज बोता है या आम का वृक्ष लगाता है उसको फल अनेक वर्षों बाद मिलता है. वैसे ही जीवन में जिस प्रकार के कर्म जिसने बांधे हैं, जिन भावों के साथ बंधे हैं उनका फल भी उसको आगे चल कर मिलता है निकाचित कर्मों का फल अनेक जिंदगियों के बाद भी भोगना पड़ता है

प्रश्न ५१ : जिज्ञासु श्री. राजेंद्र डूंगरवाल : वैज्ञानिकों का दावा है कि वे चंद्रमा पर पहुचें हैं, लेकिन शास्त्रों में मेरूपर्वत की ऊंचाई उससे ज्यादा है. कौन सही है और कैसे ?

उत्तर : यह प्रश्न युगीन एवं आगामिक संदर्भों से अनुबंधित है इस विषय में एक बात समझ लेना आवश्यक है कि जैनागमों का प्रमुख प्रतिपाद्य मुक्ति मार्ग है भूगोल–खगोल संबधि वर्णन वहा प्रासंगिक रूप में ही हुआ है. चूंकि इस वर्णन से आत्म साधना अथवा कल्याण का कोई सीधा संबंध नहीं है अतः इस विषय पर अधिक चर्चा निरर्थक ही होगी. स्थूल रूप से आगमों में चंद्र को सूर्य से ऊपर माना गया है और अनेक चंद्र एवं अनेक सूर्य माने गए है किंतु आज आगमिक गणित की पुंजी उपलब्ध नहीं है. इधर विज्ञान भी अनेक चंद्र मानने के पक्ष में आ गया है. किंतु यह स्मरण रहे कि विज्ञान सदा परिवर्तन शील रहा है. उसकी नई खोजें पुरानी को नकारती जाती हैं, अतः उसे भी एकात सत्य मान लेना भारी भूल होगी.

चद्र पर पहुंचने के विषय में भी अभी सभी वैज्ञानिक एक मत नहीं हुए है. कोई उसे चंद्र मानते हैं और कोई नहीं.

सन् १९७५ में उदयपुर में एक सौर वेधशाला का उद्घाटन करने के लिए तत्कालीन उप-राष्ट्रपति बी. डी. जत्ती आये थे, उस

समय राजस्थान एव गुजरात के अनेक मिनिस्टर भी उपस्थित
उस समय वहा एक पेम्पलेट वितरित हुआ जिसमें यह स्पष्ट घोषणा
थी कि "मैसाणा रिसर्च इस्टटीटयूट के वैज्ञानिकों का यह दावा
है कि अमेरीका ने जो चंद्रमा पर जाने की घोषणा की है वह मिथ्या
है. दूसरे दिन उदयपुर के स्थानीय दैनिक पत्रों में तथा नव भारत
टाईम्स में उस पेम्पलेट को ज्यो का त्यों प्रकाशित किया. यहीं नहीं
"नव भारत टाईम्स" ने उस पर टिप्पणी भी की कि इस पर्चे ने
खगोल शास्त्रियों में खलबली मचा दी है

१. नवभारत टाइम्स में मुद्रित पर्चे की अविकल कॉपी
यहां प्रस्तुत है.

-संपादक

क्या चांद पर अपोलो उतरा?

सौर वेधशाला के उद्घाटन पर बटे पर्च से खलबली

देश के विभिन्न भागों तथा आस्ट्रेलिया से आये वैज्ञानिक और भौतिक अनुसंधान पर संगोष्ठी में भाग लेते हैं इस अवसर पर मेहसाणा की 'दि अर्थ रोटेंशन रिसर्च इस्ट्रीटयुट' की ओर से एक पर्चा वितरित किया गया. जिसमें वैज्ञानिक आकड़ों से यह सिद्ध किया गया है कि चद्रमा पर अपोलो के जाने का दावा झूठा है. इसके लिए निम्न प्रमाण दिये गये हैं. अपोलो एक सौ उन्नीस मील दूर गया वहा से पूर्व की तरफ मुड़ कर दो लाख तीस हजार मील जा कर चद्रमा पर उतरा. परतु पृथ्वी की उंचाई का कक्ष एक सौ नब्बे मील से अधिक नहीं है और चंद्रमा दुनिया से ३१ लाख ६८ हजार मील दूर है, इसके लिए अपोलो को इतना दूर जाना चाहिए परतु वह अभी तक अतरिक्ष अनुसधान वैज्ञानिकों के अनुसार एकसौ नब्बे मील से ज्यादा दूर नहीं गया इससे यह सिद्ध हुआ कि अपोलो सीधा न जा कर पृथ्वी के ही किसी अज्ञात पर्वत पर उतर गया.

दूसरा कारण चंद्रभूमि से मिट्टी के जो तथाकथित नमूने यहा लाये गये है वे पृथ्वी के नमूने जैसे ही हैं यह वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है.

तीसरा कारण यह कि वैज्ञानिक एक तरफ कहते है कि चंद्रमा पर हवा नहीं है और वर्षा नहीं होती. जबकि दूसरी तरफ कहते हैं, कि वहापाच या छह इंच गहरी नमी है इससे स्पष्ट होता है कि वह चंद्रमा भूमि नहीं है.

चौथा कारण केपकेनेडी के वैज्ञानिक बार-बार कहते हैं कि चंद्रमा की बनावट पृथ्वी जैसी है. जिससे वह सिद्ध होता है कि जिस जगह अपोलो गया वह पृथ्वी का ही अज्ञात स्थान है.

पाचवा अपोलो उत्तर से दक्षिण दिशा मे पृथ्वी के चक्कर काटता रहा, लेकिन वह पूर्व से पश्चिम की ओर एक सौ नब्बे मील जाने के बाद टेढा हो कर पूर्व दिशा में दो लाख तीस हजार मील गया था.

छठा अपोलो चंद्रमा पर कैसे पहुंचा जबकि उड़ान लेते समय उसका कोण विषुवत् रेखा से सात अंश था तथा चंद्रमा और पृथ्वी में बीच की दूरी उस समय अत्यधिक थी.

सातवा अपोलो आठ, नौ, दस व ग्यारह के अतिरिक्त यात्रियों ने चंद्रमा भूमि को सपाट बताया है उसे धूल का सागर गहरे गड्ढों की भूमि, शात हुए ज्वालामुखियों का गहरा बताया है. इससे स्वतः स्पष्ट होता है कि वह स्थान पृथ्वी का कोई अज्ञात स्थान ही हैं

ऐसी स्थिति में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि अपोलो से लेकर १४-१५ तक जिस स्थान पर उतरे उसे चंद्रमा ही मान लिया जाय हो सकता है कि वे किसी अन्य स्थान पर उतरे हों और उसे चंद्रमा मान लिया गया हो.

इसके अतिरिक्त चंद्र यात्री वैज्ञानिकों की रिपोर्ट भी परस्पर

असम्बद्ध है. अतः वैज्ञानिक दृष्टि से भी अभी किसी भी पर नहीं पहुचा जा सकता है.

यह कहा जाता है कि चद्रमा पर भीषण शीत, धूल और आंध के अतिरिक्त कुछ नहीं है, वहा किसी प्राणी का रहना संभव नहीं है इसका अर्थ यह हुआ कि जो वातावरण वहा है वह चंद्रमा में नहीं हो सकता. अतः वह चंद्रमा भूमि नहीं है।

पृथ्वी का व्यास चंद्रमा के व्यास से चार गुणा अधिक है और चंद्रमा का व्यास पृथ्वी से सात इंच की प्लेट की तरह दिखाई देता है. यह दावा किया गया कि कथित चंद्रभूमि से पृथ्वी के चित्र खींचे गये है और उन्हें प्रसारित किया गया है. उनमें यह बात दिखायी नहीं देती न ही उनसे इस प्रकार कोई प्रकाश पड़ता है. अतः चंद्रमा से पृथ्वी के चित्र लेने का दावा भी झूठा है.

इस पर्चे ने खगोल शास्त्रियों में खलबली मचा दी है।

प्रश्न ५२. : जिज्ञासु श्री मनोहरलाल जैन : मुगलकाल में जैन धर्माचार्यों व जैन धर्म का क्या स्थान था? पाकिस्तान बनने से पूर्व वहां जनाचार्य विचरण करते थे क्या? अब वहां जैन है या नहीं?

उत्तर . यह प्रश्न इतिहास से संबंधित है यदि हम जैन दर्शन का इतिहास देखे तो वह हजारो वर्ष पुराना ही नही है, जैन दर्शन का इतिहास लाखो, करोड़ो, असंख्य वर्ष पुराना है वर्तमान का इतिहास काल भी हजारो वर्ष पूर्व का मिलता है. भगवान् पार्श्वनाथ और उनके पूर्व प्रभु अरिष्ठनेमि के काल के इतिहास को आज के इतिहासकार ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं. जैन धर्म वर्तमान अवसरपिणी काल की अपेक्षा से प्रभु ऋषभदेव से चल रहा है इस दृष्टि से भी इसे असंख्य वर्ष बीत चुके हैं.

यह निश्चित है कि मुगलकाल में जैन धर्म था जैनाचार्यों का उल्लेख मिलता है हीर विजयजी, सिद्धिचन्द्रजी आदि का प्रभाव अकबर बादशाह पर था. बडे बडे राजा महाराजाओं के समय में और मुगलों के समय में जैन धर्म प्रभावी रूप में था.

दूसरा प्रश्न है पाकिस्तान में जैन धर्म है या नहीं? जिस समय हिंदुस्थान पाकिस्तान का संघर्ष हुआ उस समय पाकिस्तान में जैन मुनि थे. वहा पर जैन लोग बसते थे. आज भी बहुत से जैन पाकिस्तान में रहते होंगे. कुछ लोग वहीं के निवासी बन गये, कुछ लोग वहा से भागकर चले आये. अतः अब भी कुछ जैन पाकिस्तान में हो सकते है.

प्रश्न ५३. : जिज्ञासु श्री अविनाश जैन : आत्मा का स्वरूप क्या है? आत्मा मानव में कब और कैसे प्रवेश करती है?

उत्तर : आत्मा का स्वरूप सत्, चित्, आनद मय हैं. सत का तात्पर्य है-जिसका अस्तित्व हो. चित् का तात्पर्य हैं-जो चैतन्य हो और आनद का अर्थ हैं-जो परम शांतिमय हो जैसे यह खमा जड़ पदार्थ हैं, इसमें चेतना नही है. यह उत्पन्न होनेवाला है. लेकिन चैतन्य शक्ति इसमें नहीं है इसमें आनद की अनुभूति नहीं है. आत्मा का स्वरूप सत् चित् आनंद है.

दूसरा प्रश्न है मानव के शरीर में आत्मा कब प्रवेश करती है? आत्मा का अनादि स्वरूप है यह अनादि काल से कर्मो से जकडी हुई, बधी हुई है. जैसे जैसे आत्मा के परिणाम बनते है वह जैसी जैसी क्रियाएं करती है वैसे वैसे कर्म आत्मा के साथ चिपकते है. शास्त्रों में ८४ लाख योनियों मानी है या यह आत्मा इन योनियों में परिभ्रमण कर रही है अनेक बार इसने मनुष्य तन धारण किया हैं. यह संभव नहीं कि पहली बार ही यह मनुष्य तन में आई हो. अनेक बार मानव तन

स्वीकार किया है. वर्तमान में व्यक्ति जैसा पुरुषार्थ करता है तदनुकूल फल मिलता है मनुष्य योनि के योग्य कर्म करता है तो मनुष्य भव मिलता है तिर्यंच के योग्य कर्म करता है तो तिर्यंच भव मिलता है. जैसी क्रिया करता है वैसी गति मिलती है. हमारे मनुष्य योग्यतानुकूल कर्म हुए इसलिए हम मनुष्य तन में विद्यमान है. अच्छी क्रिया करते हैं तो स्वर्ग में जा सकते हैं, खराब क्रिया करते हैं तो नरक में जा सकते हैं, मनुष्य जीवन ऐसा जिसमें चारों गति में जा सकते हैं.

प्रश्न : एक वैज्ञानिक ने बताया कि गर्भ धारण करने के चार माह बाद आत्मा का प्रवेश होता है, क्या यह ठीक है?

उत्तर: जैन तत्व ज्ञान कि दृष्टि से जैसे ही शुक्र-शोणित दोनों तत्वों का संयोग होता है. वैसे ही अतर मुहूर्त में ५,७ मिनिट में आत्मा आ जाती है. माता आहार ग्रहण करती है उसी के अनुसार शरीर निर्मित होता है फिर इंद्रिया निर्मित होती है फिर क्रमश: निर्माण क्रिया ९ माह तक चलती है.

प्रश्न : चार माह बाद आत्मा आने की बात कहां तक सच है?

उत्तर : संभव है आपको विज्ञान का पूरा अध्ययन नहीं है. वैज्ञानिक तो वहा तक मानते हैं कि तीन माह बाद तो यह ज्ञात हो जाता है कि गर्भस्थशिशु बालक है कि बालिका अत: जो गर्भ की स्थिति बनती है उसी समय आत्मा आती है और उसी की अध्यक्षता में शरीर निर्मित होता है.

प्रश्न ५४ : श्री अशोक ओस्तवाल : योग क्या है? जैन धर्म में योगका क्या महत्व है? गृहस्थ जीवन में योग की साधना कैसे की जाती है?

उत्तर : आपका प्रश्न है, योग क्या है, जैन धर्म में योग का क्या महत्व है? जैन दर्शन में योग का व्यापक विवेचन मिलता है. योग के

विषय में प्रभु के सिद्धात का जैनाचार्य विभिन्न रूपों में वर्णन करते हैं. महर्षि पंतजली ने कहा कि "योगस्चित्तवृत्ति निरोध" योग से चित की वृत्तियां रुकती है. योग अपनी चित्तवृत्तियों का विचारों का निरोध करनेवाला है. रोकने वाला है जब चित वृत्तिया रुक जाती है तब योग की परिपूर्ण स्थिति बनती है लेकिन चित्तवृत्तियां रोकी नहीं जा सकतीं. उनका प्रवाह मोड़ा जा सकता है. आचार्य प्रवर ने गभीर अनुशीलन के पश्चात् योग की मौलिक परिभाषा दी है–" योगश्चित वृत्ति सशोधः

योग वह है जो चित्तवृत्तियों अथवा विचारों में सशोधन करता है, आचरण में संशोधन करता है, हमारे मस्तिष्क में शुभ विचार भी आ सकते हैं. अशुभ विचार भी आ सकते है. मुह से सही शब्द भी निकल सकते है और गलत शब्द भी. आचरण सही भी हो सकता है और गलत भी. यह जो प्रवाह है मन, वचन और काया का वह योग है. इन प्रवाहों में जो दूसरे विकृत तत्व मिलते हैं, हमारे जो गलत विचार है उनका सशोधन कर दिया जाय यह परिभाषा सही मालूम होती है, क्योंकि चित्तवृत्तियां रोकी नहीं जा सकती. अब रहा गृहस्थ जीवन में योग साधना का सवाल. गृहस्थ भी मन, वचन और काय इन तीनों से अच्छे प्रयोग कर सकता हैं, चाहे वह घर पर, दुकान पर या और कहीं रहे. यदि अपनी चित्तवृत्तियों को प्रशस्त दिशा प्रदान कर रहा है तो वह भी एक प्रकार से योगसाधना कर रहा है. किंतु पूर्ण योग के लिए परिपूर्ण साधना में उतरना होगा

योग में मूलभूत तीन तत्व हैं, मन योग, वचन योग और काया योग मन से चिंतन करते है मुह से वचन का प्रयोग करते हैं और काया से आचरण करते हैं गलत आचरण का चिंतन नहीं करें. सही सोचें और जैसा विचार करता हैं वैसा ही व्यवहार करें. जीवन में व्यवहार सही नहीं बनता तो योग की अतरंग साधना नहीं की जा सकती.

प्रश्न ५५. : जिज्ञासु चद्रा खींवसरा भगवान को किसी ने नहीं देखा, फिर उनकी तरह तरह की मूर्तियां कैसे बनाई गई ?

उत्तर . भगवान को वर्तमान में नहीं देखा है. अत. भगवान की मूल आकृति की मूर्तिया नहीं मिलती है. बाद में कलाकारों ने अपनी अपनी समझ के अनुसार मूर्तिया निर्मित की यदि भगवान को देख कर मूर्तियां बनाई होती, तो सब अलग अलग होतीं. किंतु आज जैसी महावीर की या ऋषभदेव भगवान की मूर्तिया मिलती है. प्रायः वैसी ही दूसरे भगवान की मिलती है जिन्होंने भगवान को नहीं देखा उन्होंने अपनी कल्पना के आधार पर बनाई है, क्योंकि मूल भूत भगवान की मूर्तिया मिलती ही नहीं है.

प्रश्न ५६.: जिज्ञासु श्री राजेश कांठेड: महावीर स्वामी अहिंसा के अवतार हैं ऐसा क्यों कहा गया है?

भगवान महावीर स्वामी के पीछे जितने और जो जो विशेषण लगाये गये हैं, वे यथेष्ट रूप में सार्थक विशेषण लगाये गये हैं. महावीर के जन्म के समय जो सामाजिक एवं धार्मिक वातावरण था वह हिंसा से परिपूर्ण था. वह हिंसा, हिंसा की दृष्टि से हो रही थी. ऐसी बात नहीं थी धर्म की दृष्टि से हिंसा हो रही थी. कहीं अश्वमेध यज्ञ हो रहा था, कहीं नर मेध यज्ञ हो रहा था, तो कहीं पशुओं का हवन किया जा रहा था. यह सब धर्म के नाम पर हो रहा था. धार्मिक कहलानेवाला लोग हिंसा कर रहे थे. जिन मनुष्यों और पशुओं की बलि दी जा रही थी उनके बारे में कहा जाता था कि वे स्वर्ग में पहुच रहे हैं. ऐसी भ्राति धर्म के सबध में चल रही थी. उस समय प्रभु महावीर ने अनेक विषयों में क्रांति की. उनमें एक स्वर ऐसा भी था जिसे अभयदान कहते हैं. ससार के सभी प्राणी शाति प्रिय है कोई मरना नहीं चाहता सभी जीना चाहते हैं. सब को जीने दो इसी नारे को ले कर उस समय अहिंसक क्राति हुई, जिसने रूढ हिंसा का विरोध किया इसलिए उनको अहिंसा का अवतार कहा गया. वे एक अनूठे लोकोत्तर पुरुष हुए हैं उनका जीवन ही अहिंसा मय हो गया, इसलिए वे अहिंसा के अवतार कहलाए

प्रश्न ५७. : जिज्ञासु श्री विठ्ठलभाई : दुनियानो हेतु शु छे? दुर्गुणो नु मूळ शु आवती चोवीसीमा पण तीर्थंकरो नक्की थयेला होय तो पुरुषार्थ नुं बीज केटलु?

उत्तर : विठ्ठल भाई ने पूछा है कि दुनिया का हेतु क्या है. सुंदर प्रश्न है. वैसे दुनिया का हेतु आप किस रूप में जानना चाहते हैं? आपका पूछने का आशय यह हो कि दुनिया क्यों पैदा हुई? तो जैन दर्शन शास्त्र दुनिया को अनादिकालीन मानते हैं. कहाँ शुरूआत हुई इसका पता नहीं. दूसरे मतावलम्बी इसे ईश्वरीयदिन मानते हैं वहा जैन दर्शन कहता है कि सृष्टि अनादिकालीन है, अनंत काल तक चलती रहती है. इसके रूप में परिवर्तन होता है जहा स्थल भूमि है वहा जल भूमि या समुद्र हो जाता है और जहा जल है वहा स्थल या पहाड हो जाते है इसके पीछे हेतु नहीं है जो शाश्वत है उसका हेतु नहीं होता. अंडे से मुर्गी पैदा हुई या मुर्गी से अंडा पैदा हुआ? यह अनादि है एकदूसरे से पैदा होते है.

इनका दूसरा प्रश्न है कर्म का मूल क्या है? इसका उत्तर यह है कि कर्म का मूल आत्मा की राग द्वेषात्मक परिणामि है. अपनी ही शुभ अशुभ प्रवृत्ती द्वारा कर्म बधते है. कर्म वर्गणा के पुदगल सृष्टि में भरे है. शरीर पुदगलों के बीच में है. आत्मा जिस समय जैसा कार्य करती है वैसे ही कर्म उसके चिपक जाते है. कर्म का मूल आत्मा है.

इनका तीसरा प्रश्न है कि आगामी तीर्थंकर नक्की है फिर पुरुषार्थ क्यों. हमें पुरुषार्थ तीर्थंकर बनने के लिए नहीं करना है, आत्मा को कर्मो से मुक्त कराने के लिए पुरुषार्थ करना है. आत्मा जब कर्मो से रहित हो जाती है तब तीर्थंकर बनते है. हम ऐसा पुरुषार्थ करें जिसमे आत्मा शुद्ध बन जाय. इसके अतिरिक्त तीर्थंकर कुछ ही चोवीसियों के निश्चित है अतः अन्य व्यक्ति भी तीर्थंकर

उत्तर . भगवान को वर्तमान में नहीं देखा है. अत: भगवान की मूल आकृति की मूर्तिया नहीं मिलती है. बाद में कलाकारों ने अपनी अपनी समझ के अनुसार मूर्तिया निर्मित की यदि भगवान को देख कर मूर्तियां बनाई होती, तो सब अलग अलग होतीं. किंतु आज जैसी महावीर की या ऋषभदेव भगवान की मूर्तिया मिलती है. प्रायः वैसी ही दूसरे भगवान की मिलती है जिन्होंने भगवान को नहीं देखा उन्होंने अपनी कल्पना के आधार पर बनाई है, क्योंकि मूल भूत भगवान की मूर्तिया मिलती ही नहीं है

प्रश्न ५६. : जिज्ञासु श्री राजेश कांठेड : महावीर स्वामी अहिंसा के अवतार हैं ऐसा क्यों कहा गया है ?

भगवान महावीर स्वामी के पीछे जितने और जो जो विशेषण लगाये गये हैं, वे यथेष्ट रूप में सार्थक विशेषण लगाये गये हैं. महावीर के जन्म के समय जो सामाजिक एवं धार्मिक वातावरण था वह हिंसा से परिपूर्ण था. वह हिंसा, हिंसा की दृष्टि से हो रही थी. ऐसी बात नहीं थी धर्म की दृष्टि से हिंसा हो रही थी. कहीं अश्वमेध यज्ञ हो रहा था, कहीं नर मेघ यज्ञ हो रहा था, तो कहीं पशुओं का हवन किया जा रहा था यह सब धर्म के नाम पर हो रहा था. धार्मिक कहलानेवाला लोग हिंसा कर रहे थे. जिन मनुष्यों और पशुओं की बलि दी जा रही थी उनके बारे में कहा जाता था कि वे स्वर्ग में पहुच रहे हैं. ऐसी भ्राति धर्म के सबध में चल रही थी उस समय प्रभु महावीर ने अनेक विषयों में क्राति की. उनमें एक स्वर ऐसा भी था जिसे अभयदान कहते हैं. ससार के सभी प्राणी शाति प्रिय है कोई मरना नहीं चाहता सभी जीना चाहते हैं. सब को जीने दो इसी नारे को ले कर उस समय अहिंसक क्राति हुई, जिसने रूढ हिंसा का विरोध किया इसलिए उनको अहिंसा का अवतार कहा गया. वे एक अनूठे लोकोत्तर पुरुष हुए है उनका जीवन ही अहिंसा मय हो गया, इसलिए वे अहिंसा के अवतार कहलाए

प्रश्न ५७. : जिज्ञासु श्री विठ्ठलभाई : दुनियानों हेतु शु छे ? दुर्गुणों नु मूल शु आवती चौवीसीमा पण तीर्थंकरों नक्की थयेला होय तो पुरुषार्थ नुं बीज केटलु ?

उत्तर : विठ्ठल भाई ने पूछा है कि दुनिया का हेतु क्या है. सुंदर प्रश्न है. वैसे दुनिया का हेतु आप किस रूप मे जानना चाहते है ! आपका पूछने का आशय यह हो कि दुनिया क्यों पैदा हुई ? तो जैन दर्शन शास्त्र दुनिया को अनादिकालीन मानते हैं कहाँ शुरूआत हुई इसका पता नहीं दूसरे मतावलम्बी इसे ईश्वरीयदिन मानते हैं वहा जैन दर्शन कहता है कि सृष्टि अनादिकालीन है, अनंत काल तक चलती रहती है. इसके रूप में परिवर्तन होता है जहा स्थल भूमि है वहा जल भूमि या समुद्र हो जाता है और जहा जल है वहा स्थल या पहाड हो जाते है इसके पीछे हेतु नहीं है जो शाश्वत है उसका हेतु नहीं होता. अंडे से मुर्गी पैदा हुई या मुर्गी से अंडा पैदा हुआ ? यह अनादि है एकदूसरे से पैदा होते है.

इनका दूसरा प्रश्न है कर्म का मूल क्या है ? इसका उत्तर यह है कि कर्म का मूल आत्मा की राग द्वेषात्मक परिणामि है. अपनी ही शुभ अशुभ प्रवृत्ती द्वारा कर्म बधते है. कर्म वर्गणा के पुदगल सृष्टि में भरे है. शरीर पुदगलों के बीच में है. आत्मा जिस समय जैसा कार्य करती है वैसे ही कर्म उसके चिपक जाते है. कर्म का मूल आत्मा है.

इनका तीसरा प्रश्न है कि आगामी तीर्थंकर नक्की है फिर पुरुषार्थ क्यों हमें पुरुषार्थ तीर्थंकर बनने के लिए नहीं करना है, आत्मा को कर्मो से मुक्त कराने के लिए पुरुषार्थ करना है. आत्मा जब कर्मो से रहित हो जाती है तब तीर्थंकर बनते है. हम ऐसा पुरुषार्थ करें जिसमे आत्मा शुद्ध बन जाय. इसके अतिरिक्त तीर्थंकर कुछ ही चौवीसियों के निश्चित है अतः अन्य व्यक्ति भी तीर्थंकर

नाम कर्म का बंधन कर के तीर्थंकर बन सकते है. आनेवाली अनेक चौवीसियों में या महाविदेह क्षेत्र में.

प्रश्न ५९. : जिज्ञासु श्री काल्लूलाल मेहता · केवल ज्ञान क्या है? पुराने जमाने में होता था इस समय क्यों नहीं होता? बाल ब्रह्मचारी साधु क्यों नहीं केवल ज्ञान प्राप्त करने की ओर अग्रसर होते?

उत्तर : पहला प्रश्न है केवल ज्ञान क्या हैं. केवल ज्ञान वह है जिसके द्वारा ब्रह्मांड के तीनों लोकों में अथवा पूरे विश्व में क्या हो रहा है इस बात को एक ही समय में जान सकें, एक ही समय में देख सकें. तात्पर्य यह है कि वर्तमान में क्या हो रहा है, भविष्य में क्या होगा इसको एकही समय में देखले. स्फटिक मणि जितनी साफ होती है, उसमें स्पष्ट दिखाई देता है उसी तरह केवलज्ञानी को पूरे ब्रह्माण्ड में क्या हो रहा है, क्या होगा यह दिखाई देता है, इसको कहते है. केवलज्ञान.

अब रहा सवाल की आज के युग में केवल ज्ञान क्यों नहीं होता? आत्मा की जितनी शक्ति पहले थी उतनी आज भी है. लेकिन इस आत्मा को जिस शरीर से पुरुषार्थ करन चाहिए उसमें अंतर आ गया है. १००० वाल्ट का बल्ब जितना प्रकाश खुले स्थान पर फैलाता है, उतना यदि उसे एक मटकी में रख दिया जाय तो नहीं करेगा. मटकी में मटकी के क्षेत्र में ही प्रकाश करेगा. वर्तमान युग में इस शरीर से केवल ज्ञान प्राप्त करने योग्य पुरुषार्थ नहीं किया जा सकता इस लिए आज केवल ज्ञान प्राप्त नही होता. केवल ज्ञान की प्राप्ति के लिए वज्र ऋषभनाराच सहनन (हड्डियों की मजबूती) चाहिए और वह आज उपलब्ध नहीं है. इस सहनन में पूरी ट्रेन भी शरीर पर से निकल जाए तो भी कुछ नहीं बिगड़े और यह सब कमजोरी इस ह्रास काल के कारण हो रही है

प्रश्न ५९. : (अ) जिज्ञासु श्री हुकमीचंद डांगी : बताया जाता है कि मनुष्य जीवन पाना बहुत कठिन है, लेकिन मनुष्य जीवन पाना इतना सरल हो गया है कि उसको रोकने के लिए सरकार काफी रुपया खर्च कर रही है फिर भी रोक नहीं पा रही है. तो हम कैसे मानें कि मनुष्य जीवन पाना बहुत दुर्लभ है ?

(ब) यह तो सर्व मान्य है कि भगवान आदिनाथ के समय में तिथी नहीं थी फिर भी उनकी जन्म तिथि और उनके समय के श्रावकों की गिनती कैसे बताई जाती है ?

उत्तर : वस्तुतः मनुष्य जीवन पाना बहुत दुर्लभ हैं किन्तु केवल मानव चोले की दुर्लभता नहीं बताई है, मानवता को दुर्लभ बताया है. आज मनुष्यों की संख्या तो बढ रही है लेकिन उनमें मानवता कितनी है. अगर मानव बढती तो सरकार रोकने का प्रयास नहीं करती.

शास्त्रों में जो बात कही गई है वह मनुष्यत्व की है, मनुष्य चोले की नहीं. मानवता दुर्लभ है मानव तन दुर्लभ नहीं है. वैसे तो एकेंद्रिय से बेइंद्रिय बनते हैं और उससे भी आगे विकास करते हैं तो अनंत पुण्यवानी के द्वारा ही दूसरी बात यद्यपि दुर्लभता मनुष्यत्व की बताई गई है किंतु मनुष्यतन भी प्राप्त होता सहज नहीं है आज जो जन संख्या बढ़ रही है और सरकार के रोके नहीं रुक रही है इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य जीवन सुलभ है. पूर्व जन्मों में जिन्होंने पुण्य का अर्जन किया और देवलोक में गए है अथवा पाप के द्वारा नरक, तिर्यंच में गए वे मर कर पुनः मनुष्य गति में आ रहे हैं अतः यह उनके पुण्य कारण ही मिल रहा है.

आपका दूसरा प्रश्न तिथी और गिनती के बारे में है. उस समय भी वर्ष तीथी और महीने थे और ये अनादिकाल से चले आ रहे हैं विक्रम संवत बाद में चला है लेकिन तीथि, महीने, पर्व वर्तमान में हैं, भूत में थे और भविष्य में भी रहेंगे.

प्रश्न ६४. : जिज्ञासु श्री. दौलत जैन : आत्मा यदि अमर है तो इसकी संख्या निश्चित है या नहीं ?

उत्तर : प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र इकाई है. उसका मौलिक स्वरूप एक है, किंतु इसकी संख्या गणना की जाय इस रूप में निर्धारित नहीं है. अनंत संख्या की गिनती नही हो सकती। जैसे कर्म होते हैं, आत्मा वैसा ही शरीर धारण करती है. एक आत्मा ने पशुयोनी के कर्म किये हैं तो वह पशु योनी में चली जायेगी. देव योनी में जाने के कर्म किये हैं तो देव योनि में चली जायेगी, आत्मा अपने-अपने कर्मों के आधार पर विभिन्न योनियों में जाती है. इसलिए व्यवहारिक दृष्टि से कहते हैं कि आत्मा जन्म लेती है, मरती है, किंतु वास्तव में आत्मा मरती नहीं. उसका पर्याय बदलता है. एक शरीर से दूसरा शरीर धारण करती हैं. आत्मा नष्ट नहीं होती, पैदा नहीं होती, पर्याय बदलती हैं. किंतु अपने मूल रूप में सदा बनी रहती है, इसीलिए उसे अमर कहा गया हैं.

दिनाक १२-८-८४

प्रश्न ६५. : जिज्ञासु श्री अशोक ओस्तवाल : चौबीसों तीर्थंकर राजपूत थे जब कि जैन आचार्य पद सिर्फ जैनियों को ही दिया जाता है क्या महावीर स्वामीने ऐसा कहा था, अन्यथा ऐसा क्यों होता है ?

जब कि इसकी वजह से कई बार जैन समाज का विभाजन हुआ है ?

यदि कोई साधु, सिर्फ उसे आचार्य पद नहीं मिलने पर अलग विचरण करता है या अलग पंथ निकाल देता है तो उसका साधु जीवन कहा तक सार्थक है ? यदि साधु जीवन

में यह सब कुछ होता है तो साधु का समभाव कहां है?

उत्तर : प्रश्न जैन आचार संहिता से और उसके साथ ही परंपरा से संबधित है और कुछ मौलिक है।

चौवीस तीर्थंकर क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न हुए, यह ऐतीहासिक बात है, नितान्त सत्य बात है। यह समझा जाना कि जैन धर्म केवल क्षत्रियों का धर्म रहा है, सत्यता से थोडा परे रहेगा। जैन वैश्यों का धर्म रहा है, ब्राह्मणों का धर्म रहा है और शुद्रों का भी धर्म रहा है। हम जैन धर्म को थोडा ठीक से समझ लें। २४ तीर्थंकर क्षत्रिय कुल में पैदा हुए लेकिन यह केवल क्षत्रियों का धर्म नहीं है। महावीर स्वय क्षत्रिय कुल में पैदा हुए थे लेकिन उनके प्रथम गणधर, शिष्य ब्राह्मण थे, गौतम। धन्ना शालिभद्र वैश्य थे। हरिकेशि मुनि चाण्डाल थे। इस रूप में जैन धर्म ने जातिवाद को महत्व नहीं दिया है. अमुक जाति का ही व्यक्ति मुनि बन सकता है ऐसी बात नहीं है।

जहा तक तीर्थंकरों का क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होने का प्रश्न है। तीर्थंकर वे ही आत्माए बनती हैं जो पूर्व जन्म में तदनुरूप पुरुषार्थ कर चुकी हैं। परिणामत जिन में क्षात्र भावों का सृजन हो चुका है। क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होनेवालों में पराक्रम होता है, शौर्य होता है, केवल शारिरीक ही नहीं, आत्मिक शौर्य की भी आवश्यकता होती है। तीर्थंकर के लिये शौर्य व्यापक प्रभाव पड़ता है। तीर्थंकर ऊर्ध्व कर्मा होते है, जिनमें संपन्नता होती है वे करोडों सोनियों का दान देकर फिर दीक्षा लेते हैं और परिषह सहन करके कर्मों के बधन तोड़ने में समर्थ होते है। इसिलिये क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होनेवाले तीर्थंकर हुए है।

आज यह जैन धर्म क्षत्रिय कुल मे हटकर ओसवाल, पोरवाल, अग्रवालों के पास आ गया। आप सोचिये कि ओसवाल कौन है, पोरवाल और अग्रवाल कौन है? यह जाति व्यवस्था कब से बनी है, इसके विस्तार में मुझे अभी नहीं जाना है, क्योंकि समय कम है ओसिया में जितने लोग अलग-अलग जाति के बसते थे वे सब

ओसवाल बन गये और उन्होंने जैन धर्म अंगीकार कर लिया। उनमें सब जातियां समाहित हो जाती हैं। जो भी ओसवाल हैं उनमें क्षत्रिय हैं वैश्य हैं, ब्राह्मण हैं।

अब रहा सवाल कि आचार्य ओसवाल ही क्यों बनाये जाते हैं? इसके पीछे शास्त्रकारोंने कारण बताये हैं। आचार्य जाति संपन्न और कुल संपन्न होना चाहिए वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो शासन की व्यवस्था सुन्दर ढंग से लेकर चल सके, जो गंभीर हो, गुण संपन्न हो योग्य हो, सकुचित विचारधारा का नहीं हो, ऐसा व्यक्ति आचार्य पद के योग्य समझा जाता है।

अब रहा सवाल कि आचार्य पद नहीं मिलने के कारण जो व्यक्ति संघ छोड़ कर अलग हो गया और संघर्ष करने लगा तो यह बात सहज ही समझ में आ सकती है कि वह प्रतिष्ठा का भूखा था, जाति संपन्न और कुल संपन्न नहीं था चाहे वह प्रकाड विद्वान हो वह आयोग्य हैं। इसलिये सस्कार का महत्त्व जैन धर्म में माना है तो जाति सपन्नता और कुल सपन्नता आवश्यक है।

प्रश्न ६५.: व जिज्ञासु श्री अशोक ओस्तवाल: इसके लिये गृहस्थ कहाँ तक जिम्मेदार है और साधु समाज कहाँ तक जिम्मेदार हैं!

उत्तर: इसमें बात यह है कि जो आचार्य पद सभाले हुए हैं वे व्यवस्था करते हैं कि मेरे पीछे अमुक साधु संघ की व्यवस्था संभालेगा। वह भी अकेले अपने ऊपर जिम्मेदारी नहीं लेते। चतुर्विध संघ जिसमें साधु, साध्वी और श्रावक श्राविकाएं है, वे मिल कर सोचते हैं कि योग्यता के आधार पर किसको भावी आचार्य के पद पर नियुक्त किया जाय।

इस पद के लिये अमुक जाति का ही हो, ऐसी बात नहीं है। भगवान् रिषभदेव के समय में जातिवाद नहीं था। एक ही मानव जाति थी। चार

जातियां भरत के बाद आई हैं। वे भी कर्मप्रधानता से भगवान महावीर के बाद सुधर्मा स्वामी को आचार्य बनाया गया, वे जाति से ब्राह्मण थे। इसी तरह प्रभव स्वामी जाति के क्षत्रिय थे उनको भी आचार्य पद दिया गया। भावात्मक रुप को देखना चाहिये। रूढ गत किसी भी जाति में है और योग्य है तो उसको भी आचार्य पद दिया जा सकता है।

प्रश्न ६६ : जिज्ञासु श्री माणिक खिवंसरा : समीक्षण ध्यान का तात्पर्य क्या है और उसकी शाब्दिक व्याख्या क्या है? आध्यात्म और आत्मा का समीक्षण ध्यान से हेतु क्या है?

उत्तर : मूल शब्द है समीक्षण। सम + ईक्षण अर्थात् सम भाव के साथ देखना। दुनिया का हर तत्व चाहे जड हो या चैतन्य, इन सारे तत्वों को सम भाव के साथ देखना। जैसा तत्व है वैसा ही देखते हैं तो दृष्टि सम बनती है, समीक्षण की परिणति आती है। आत्मा का परिपूर्ण विकास होता है। प्रभु महावीर की दृष्टि समीक्षण भाव की थी। साढ़े बारह वर्ष तक उनकी साधना समीक्षण के आधार पर चली थी। वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बने। उन्होंने कहा कि जितने भी तत्व हैं उनको समीक्षण के साथ देखिये। जब दृष्टि परिपूर्ण व्यापक बन जाती है तो आत्मा का परिपूर्ण विकास हो जाता है।

ध्यान शुभ भी होता है और अशुभ भी। आर्त ओर रोद्र भी ध्यान हैं, धर्म और शुक्ल भी ध्यान हैं। समीक्षण ध्यान कहने से धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान ही लिये जायेंगे।

प्रश्न ६७. : जिज्ञासु श्री हजारीमलजी भैंसाली : यदि ज्योतिष ने ११ संतान होने का योग बनाया है और संतान होने के बाद फेमिली प्लानिंग का ओपरेशन करा लिया जाय तो योग का क्या होगा।

उत्तर : ज्योतिष की बात अपनी गणित विद्या के आधार पर रहती है। इस विषय में ज्योतिष की कैसी गति है उसी के आधार पर वह

बता सकता है। इसमें योग सयोग की बात नहीं बनती है। व्यक्ति के पुरुषार्थ पर भाग्य निर्मित होता है। व्यक्ति जैसा पुरुषार्थ करता है वैसा ही फल मिलता है। ज्योतिष की बात सत्य ही हो ऐसा एकान्त नहीं होता। विवाह का अच्छा मुहूर्त निकालने पर भी बहिन विधवा हो जाती है। राम को राज्य मिलने का मुहूर्त भी ज्योतिषियों ने ही निकाला था. किन्तु उसका क्या हुआ ? अतः ज्योतिष की बात सौट के सही हो, ऐसा एकान्त नियम नहीं है।

प्रश्न ६८.: जिज्ञासु डॉ. कालीदास दवे: भगवान की व्याख्या क्या है?

उत्तर: डॉक्टर साहब का प्रश्न उनके अनुरुप ही है। वे भगवान की परिभाषा पूछ रहे हैं। मनुष्य जाति या मानवीय जाति के शरीर में रहते हुए राग-द्वेष काम-क्रोध मद-मत्सर तृष्णा ये सर्वथा जिन आत्माओं से अलग हो गए हैं, जिन का सिद्ध स्वरुप बन गया, चरम स्वरुप विकसित हो गया, वह पवित्र स्वरुप भगवान है।

डॉक्टर साहब ने अपने लिखित विचार भी पढ़ कर सुनाये, उन्होंने जो भगवान की परिभाषा अपने आप में समझ है, उसके अनुसार भगवान का ऐसा रुप होना चाहिये, जो संसार का संचालन करता है। अब आप तटस्थ भाव से सोचिये कि आप डॉक्टर हैं, आपके पास जितने मरीज आयेंगे चाहे गरीब आवे, अमीर आवे, पापी आवे, धर्मी आवे, आप सब मरीजों का समभाव पूर्वक इलाज करेंगे या विषम भाव से ? आपका कर्तव्य है कि समभाव पूर्वक इलाज करें। धर्मी का इलाज करें, पापी का नहीं करें, अमीर का करें गरीब का नहीं करें यह भावना नहीं रहेगी। यदि आपने सकल्प किया है कि समभाव में रहेंगे तो आप सही माने में डॉक्टर की परिभाषा में आएगें।

लेकिन कल्पना करिये कि आपका कई दूसरा साथी भी डॉक्टर है, वह एक को निरोग बनाता है, दूसरे को और अधिक रोगी बना देता है। पापी को रोगी बनाता हैं, धर्मी को भी रोगी बना देता है तो वह डॉक्टर

सही डॉक्टर होगा क्या ? आप जो सही माने में डॉक्टर रहना चाहते हैं, ईमानदार डॉक्टर हैं तो समभाव रख कर मरीजों की सेवा करेंगें। तो जो भगवान परिपूर्ण रुप से समभाव की पराकाष्टा की आखिरी सीमा तक पहुच गये यदि वही भगवान हमारे लिये भेद के रुप में पापी को दु.खी बना दें, धर्मी को सुखी बना दें, उसके लिये उलझन पैदा कर दें तो उनको भगवान समझेंगें क्या ? आप के जैसा ईमानदार डॉक्टर भी सब के साथ समभावी रहता है तो आपके समान भी समभाव ईश्वर में रहेगा ? मैं आपको यह समझाना चाहता हूं कि यदि यह माना जाय कि भगवान एक है उसका अश हमारे अन्दर है, हमारे शरीर में आत्मा है वही स्वास लेती है वहीं हाथ पाव हिलाती है। जैसे शरीर में आत्मा अश रुप में रही है वैसी ही भगवान को एक आत्मा मानले जैसा कि आप मानते हैं जो भी काम कर रहें हैं वह भगवान कर रहें हैं। यदि कोई चोरी कर रहा है, डाका डाल रहा है, तो वह सब भगवान का अश है। भगवान की मर्जी से यह काम कर रहा है तो फिर व्यक्ति पर क्यों दोष लगाया जाय ? पूरा दोष भगवान को लगना चाहिये। भगवान की दृष्टि से सब समान हैं तो एक को सुई चुभोते हैं और उसको दर्द होता है तो सबको दर्द होना चाहिये, एक रोगी हो गया तो सभी रोगी होने चहिये, एक का रोग सुधर गया तो सब का सुधर जाना चाहिये, लेकिन ऐसा नहीं होता।

हम यह कह सकते है कि शरीर में रहनेवाली आत्मा ईश्वर की योग्यता रखती है। कुछ लोग यह मानते हैं कि ईश्वर प्रेरणा देता है, उसकी प्रेरणा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता तो क्या हम इस ईश्वर को शुद्ध, पवित्र, समभावी बनाये रख सकेंगे ? आत्मा के समस्त गुण जब पूर्ण रुप से विकासित हो जाते है, तब आत्मा सब कर्मों से रहित होकर सिद्ध पद प्राप्त करती है वही ईश्वर का स्वरुप है।

प्रश्न ६२.: जिज्ञासु सुश्री रोशन संचेती: क्या पवन और अंजना के पुत्र हनुमानजी बंदर जैसे और पूंछवाले थे ?

उत्तर: यह प्रश्न बहुतसे लोगों के दिमाग में उठता है। एक तरफ हनुमानजी को राम का परम भक्त मानते हैं, ईश्वर का रुप मानते हैं, उनमें विशाल शक्ति है लेकिन शरीर की आकृति बन्दर जैसी है, लम्बी पूंछ है, यह सब कुछ दिखाई देता है तो सामान्य व्यक्ति के मन में जिज्ञासा पैदा होती है कि भगवान के सेवक का रुप ऐसा हो सकता है क्या? वास्तव में हनुमानजी का रुप मानव आकृति का था। वे अजना और पवनजी के पुत्र थे। उनके पास वैक्रिय शक्ति थी जिससे वे चाहे जैसा रुप बना सकते थे। उनको इधर उधर जाना आना पड़ता था इसलिये वे कपि जैसा रुप बनाये रखते थे। उनका वास्तविक रुप मनुष्य का ही था।

प्रश्न ७०.: जिज्ञासु श्रीधर्मचंद जैन: यदि बाप पूरा कुव्यसनी है, दुर्व्यसनी और अनैतिक है एवं लड़का इन सब से रहित है तो भी क्या वह लड़का उस बाप की वैसी ही इज्जत करे, जैसा कि भारतीय संस्कृति का संदेश है, यदि न करे तो क्या वह लड़का कपूत है?

उत्तर: पिता पद की दृष्टि से ज्येष्ठ है। ज्येष्ठता के नाते वह वदनीय, पूजनीय है। पुत्र इस प्रकार नैतिकता का आचरण करे कि जिससे पिता के जीवन में परिवर्तन आ जाय। पुत्र यह समझे कि इन्हों ने मुझे जन्म दिया है इसलिये इनका उपकार तो मुझ पर है ही। यदि पुत्र के सदव्यवार से पिता अपने आप को दुर्गुणी मानने लग जाय तो उसके जीवन में स्वतः ही परिवर्तन आ सकता है। इसलिये पुत्र को शिष्टता नहीं छोड़नी चाहिये।

प्रश्न ७१. जिज्ञासु श्री प्रभा जैन. विवाहित स्त्री प्रतिक्रमण में स्व पुरुप और विवाहित पुरुष स्त्री बोलता है। परन्तु कुंवारे लड़के और लड़की को क्या बोलना चाहिये?

उत्तर. कंवारी कन्या को अपने मन में भावना यह रखनी चाहिये कि मै दोनों स्वरुप से ऊपर उठ कर ब्रह्मचारिणी रहे सकुं, चन्दनबाला

की परपरा में सम्मिलित हो सकूं, वैसी स्थिति नहीं है तो वर्तमान में जब तक सम्बन्ध न हो तब तक मेरे लिये जगत के सभी पुरुष भाई और पिता के तुल्य हैं। उसके पश्चात् जिस पुरुष के साथ सबध हो जायेगा उसके अतिरिक्त अन्य सब भाई और पिता के तुल्य होंगे। इस भावना को रखते हुए प्रचलित पाठ का उच्चारण करना चाहिये।

प्रश्न ७२. · जिज्ञासु श्री मूलचन्द जैन: यदि किस्मत में दीक्षा न हो तो क्या साधु संत और अन्य कि प्रेरणा से दीक्षा संभव है? यदि है तो क्या इसमें सच्चा वैराग्य और संयम पल सकता है?

उत्तर: देखिये, किस्मत क्या है? आपने भगवान महावीर की वाणी सुनी, तत्व बताये हैं, जीव अजीव आदि, इसमें भाग्य नाम का तत्व है क्या? यदि नहीं है तो उसे कहा से पकड लिया, यही मूल है हमने पूर्व जन्म में शुभ या अशुभ कर्म किये है उन्ही के अनुसार फल मिलता है। उसमें परिवर्तन करना हमारे हाथ की बात है।

मनुष्य के पास में पुरुषार्थ का बल है। और बातों को गौण कर के वीतराग वाणी पर ध्यान रखे। पुरुषार्थी भाग्य को स्वय बदल कर दीक्षा ले सकता है।

प्रश्न ७३ · जिज्ञासु श्रीमती लक्ष्मीबाई संचेती: किसी को नेत्र शिविर के द्वारा लाभ हो जाय और वह पाप कर्म करने लगे तो क्या उसके पाप कर्मो का दोष नेत्रदान शिविर से संबंधित लोगों को या नेत्रदान करने वाले व्यक्ति को लगेगा?

उत्तर: यह प्रश्न ठीक उसी प्रकार का है जैसे किसी दीन दु:खी व्यक्ति को दान दिया और उसने जाकर शराब पीली या और किसी दुर्व्यसन का सेवन कर लिया तो क्या यह दान देनेवाले व्यक्ति को लगता हैं? विचारणीय इतना ही है कि दान देनेवाला शुभ भावना से देता है। उसकी भावना रहती है कि इस आदमी को शान्ति मिले,

सुख मिले, संतोष मिले, लेकिन देनेवाले में विवेक होना चाहिये। क्योंकि दानदाता को अपनी शुभ भावना के फलस्वरुप उसी समय पुण्य बन्ध हो जाता है अंत भविष्य की प्रतिक्रिया से वह प्रभावित नहीं होता है।

मान लिजिये आपने किसी आचार्य के पास दीक्षा ली। उसके पूर्व आप एक पत्नी व्रता थे और उसमें भीमाह में एक दिन के अतिरिक्त ब्रह्मचारी थे यदि संयम साधना में मरण प्राप्त करेंगे तो देवलोक में जायेंगे। देव देवी होकर विषय भोग करेंगे तो वह पाप किसको लगेगा? क्या वह पाप दीक्षा दाता को लगेगा? नहीं मोक्ष में जाने के लिये दीक्षा दी जाती है। वर्तमान में मोक्ष नहीं होने से देव लोक में जाना पड़ता है। उसका परिणाम दीक्षा दाता पर नहीं जाता। इसी प्रकार नेत्र दान देनेवाले ने शुभ भावना से दिया, यह सोचकर दिया कि वह नेत्र का सदुपयोग करेगा, दुरुपयोग नहीं करेगा। इसपर भी कदाचित् वह दुरुपयोग करता है तो आपको दोष नहीं लग सकता। आपकी भावना पापकी नहीं है, तो आपको पाप कैसे लगेगा? दलाली करने वाला इधर का सैंपल उधर बताता है और सौदा पक्का करा देता है, अपना कमीशन या दलाली ले लेता है उसके बाद यदि सामनेवाली पार्टी का दिवाला निकल जाता है तो क्या दलाल पर उस का भार आयेगा? नही आयेगा।

प्रश्न ७४. जिज्ञासु श्री. आनंदराज तलेसरा: साधु मुनिराजों को वन्दना करने से क्या लाभ है?

उत्तर: वंदना उस समय की जाती है जब कि हमारे मस्तिष्क में विचार आता है कि ये वंदनीय हैं, पूजनीय हैं। यह विचार हमारे सयम का आधार भूत होता है तो मन, विचार और उच्चारण से वंदन करता है तो आत्मा निर्मल होती है, कर्म टूट जाते है। आगमों में उल्लेख है कि वन्दणएण भन्ते। जीवे किं जण यदू ·।'

'गोयमा। वन्दण एण नीया गोयं कम्मखवे दूं उच्चा गोयंत कम्कम्म निबध्द दू'

अर्थात भाव पूर्ण वन्दन करने से नीच गोत्र सम्बधी कर्मों का क्षय होता है और उच्चगोत्र सम्बन्धि कर्मों का बन्ध होता है।

इसीप्रकार मुनियों को वन्दन करने से अभिमान का त्याग होता है, विनय भाव की वृद्धि होती है, आदि अनेक लाभ हैं वन्दन करने से।

दिनाक १९-८-८४

प्रश्न ७५ : जिज्ञासु श्री दिनेश जैन : औरत को केवलज्ञान क्यों नहीं होता?

उत्तर : प्रश्न सिद्धान्त मे संबंधित है। शायद आपको इस विषय में पूरी जानकारी नही हैं। स्त्री को केवलज्ञान हो सकता है, मोक्ष में जा सकती है। चन्दनबाला आदि अनन्त स्त्रिया मोक्ष में गई और अनन्त चली जायेंगी।

प्रश्न ७६ : जिज्ञासु रीता दसानी : सूर्य निकलता है डूबता है। चाँद तारे निकलते हैं और डूबते हैं ऋतुएं बदलती है। इन सबके पीछे कोई न-कोई अदृश्य शक्ति जरूर है। अगर है तो वह ईश्वर है। मगर जैन धर्म ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता, तो इन सब परिवर्तनों के पीछे कौनसी शक्ति कार्य कर रही है?

उत्तर : सूर्य का उदय होना अस्त होना, ऋतुओं में परिवर्तन होना, चन्द्रमा और तारों का निकलना, डूबना, इन सबके पीछे अदृश्य शक्ति ईश्वर ही है यह नहा कह सकते। सूर्य विमान है। विमान के अन्दर रहनेवाले देवता की विशेष शक्ति से इसकी गति है। चन्द्रमा, तारे आदि दिखनेवाले देव विमान है और देव इनको चलाते हैं, उदय अस्त की प्रक्रिया भी इन्हीं के द्वारा होती है। ऋतुओं में परिवर्तन सूर्य की

गति के द्वारा होता। जो अदृश्य शक्ति इन सब का संचालन करती है वह ईश्वर है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। देवताओं द्वारा परिवर्तन होता है इस परिवर्तन को ईश्वर के नाम पर मान लेंगे तो ईश्वर कहीं पर एक तरह की मौसम करता है कहीं दूसरी तरह की करता है, कहीं गर्मी की मौसम है तो कही वर्षा ऋतुएं अगर इस सबको ईश्वर प्रदत्त मानें तो ईश्वर में सम भाव नही रहेगा वह रागी-द्वेषी होगा। जो रागी द्वेषी होगा वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता जो सर्वज्ञ सर्व दर्शी नहीं है वह ईश्वर नहीं हैं। आपने कभी मिर्ची के बीज खाये या नहीं खाये तो मुह जला या नहीं ? मुंह जलाना मिर्ची का स्वभाव है वैसे ही डाक्टर तीनचार तरह की गोलियां देता है, एक व्यक्ति को मलेरिया की तकलीफ है, दूसरे को निमोनिया की तकलीफ है। गोलियों को एक साथ मुंह में डालते हैं तो अपने-अपने स्वभाव के अनुरूप अलग-अलग असर करती है। ठीक इसी प्रकार सभी प्राकृतिक रचनाओं का अलग-अलग स्वभाव है।

जैन धर्म ईश्वर को मानता है उनकी प्रार्थना करता है लेकिन छोटे कामों में उनको उलझाता नहीं है। जो कुदरती तत्व है वे अपना अपना कार्य करते हैं। सूर्य कुदरती तत्व है वह सब को प्रकाश देता है।

प्रश्न ७७ : जिज्ञासु श्री. अशोक ओस्तवाल : आत्मा कितने प्रकार की है ?

उत्तर : वैसे मूल में आत्मा का मौलिक स्वरूप एक ही प्रकार का है संसार में मूल में दो तत्व है, जड़ और चेतन। जड़ तत्व में स्व और पर को समझने की क्षमता नहीं है। वह सत्य, असत्य, विवेक क्या है यह नहीं जानता। जो न अपने स्वरूप को जानता है वह जड़ है। जो स्वयं को जानता है, परको जानता है, हित अहित को जानता वह चैतन्य है। चैतन्य में ज्ञान है, उपयोग है, वह अनन्त शक्ति सपन्न है आत्मा ८ प्रकार की बताई है, द्रव्य आत्मा, कषाय आत्मा, योग

आत्मा, उपयोग आत्मा, ज्ञान आत्मा, दर्शन आत्मा, चारित्र आत्मा और वीर्य आत्मा जिस समय आत्मा कषाय में परिणति करती है, कषाय आत्मा कहलाती है। जिस समय आत्मा ज्ञान में रमण करती है उस समय ज्ञान आत्मा होती है। ये भेद प्रभेद होते हुए भी मूल में आत्मा एक है। यह सब पर्याय दृष्टि का भेद है।

प्रश्न ७८. जिज्ञासु श्री इन्द्रसिंह साभर: हम लोग जैन धर्म को संसार के सबसे पुराने धर्मों में मानते हैं। इसके संस्थापक श्री ऋषभदेव स्वामी थे। हमारे अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध लगभग दोनों समकालीन थे। श्री मोहम्मद, ईसा मसीह और नानक देव ने अपने-अपने धर्मों का चलन इनके बाद में किया। जैन धर्म के मतानुयायी सबसे कम है। हम लोग मूलतः तीन भागों में और हरेक भाग अलग-अलग संप्रदायों में बंटा हुआ है। इसका एक मुख्य कारण मेरे अनुसार मतानुयाइयों के संकीर्ण विचार व रुढिवादिता का पालन है। जैन धर्म के पुराने शास्त्र व पुरानी मान्यताओं को आज की वैज्ञानिक खोजों को देखते हुए परिवर्तन करना चाहिये। धर्म को आधुनिक वैज्ञानिक परिवेश में ढालने की आवश्यक तम सब पढ़े लिखे व विचारक महसूस करते है। यह कार्य आचार्यों द्वारा ही किया जा सकता है, मैं ऐसा समझता हूं। आप बतायें कि यह कार्य कैसे किया जा सकता है?

उत्तर: आपका प्रश्न विस्तृत एवं अवान्तर प्रश्नों से युक्त है। आप जरा चिन्तन करिये, भगवान् रिषभदेव ने ही यह धर्म नहीं चलाया, यह धर्म अनादिकाल से चला आ रहा है, लेकिन इस धर्म का प्रगटिकरण इस अवसर्पिणी में ऋषभदेव ने किया। आत्मा कब पैदा हुई यह प्रश्न पैदा नही होता। आत्मा का स्वभाव ही धर्म है। जब तीर्थंकर जैसे शक्तिशाली पुरुष पैदा होते हैं तो दुनिया में धर्म की प्रभावना होती है।

आप ऊपर की बातों को पकड़ लेते हैं धर्म के स्वरूप को नहीं पकड़ पाते। बौद्धिक स्थिति से चलते हैं, अन्तर को भुला देते हैं। मतभेद होना स्वाभाविक है। जो अलग अलग विषय के व्यक्ति हैं वे अलग अलग विचार रखते हैं। यदि सब की रुचि धर्म की ओर हो जाय तो कितनी अच्छी बात हो सकती है।

वर्तमान में आप व्यापार कर रहे हैं, आपकी बुद्धि इसमें लग रही है इसमें परिवर्तन, परिवर्धन करना चाहें तो यह आपके हाथ की बात है। मौलिक धर्म में कभी परिवर्तन नहीं होता। आत्मा की पर्याय बदलती हैं लेकिन ध्रुव रूप एक रहता है। वैसे ही निजी स्वभाव अहिंसा परमोधर्म है, यदि यह आत्मा का स्वभाव है तो इस स्वभाव को प्रगट करने के लिये आप साधना अनुपालन में भेद कर सकते हैं कि मेरे से इतनी हद तक अहिंसा का पालन होगा। लेकिन अहिंसा के टुकडे नहीं कर सकते। जिसकी जितनी क्षमता है उसी के अनुसार ईमानदारी से कहे कि मैं इतना पालन कर सकता हूं।

आपके शरीर में पाच मौलिक इन्द्रिया है आख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा किसी भी समय इनका जहा स्थान है वहीं रहेगा। ऋषभदेव के समय में भी ऑखे इसी स्थान पर थी, पीछे नहीं थी और भविष्य में भी इसी स्थान पर रहेगी आँख पीछे नहीं जाती। नाक भी वहीं पर रहता है। इसी प्रकार जो आत्मा का मौलिक धर्म है उसमें परिवर्तन नहीं होता। वह एक रूप होकर ही विश्व शान्ति का अमोघ उपाय बन सकता है।

प्रश्न ७८ : जिज्ञासु श्री चन्द्रप्रकाश : हमारा धर्म अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी हम संख्या में इतने कम क्यों हैं ? यदि मै सबके साथ अच्छा वर्ताव करता हूं तो मै आशा करता हूं कि सब मुझे अच्छा मानेंगे। क्या हमारे धर्म में विसंगतियां नहीं है ?

उत्तर : धर्म में विसंगति नहीं है। मै दूसरे की भलाई कर रहा हूँ, तो दूसरा भलाई करे या न करे। आप दूसरे के सहारे जीवन को मत

तोलिये। मैं साधु धर्म का पालन कर रहा हूँ। दूसरा नहीं कर रहा है तो उसका वह जाने। उसे आत्म शान्ति की आवश्यकता होगी तो आज नहीं कर रहा है तो कल करेगा। जैनियों की संख्या इसलिये कम है कि जैन धर्म के सिद्धान्त सूक्ष्मता पूर्वक आत्मनिरीक्षण की प्रेरणा देते है आज लोगों का ध्यान बाह्य पदार्थों की तरफ है। आप सोने के व्यापारी हैं, दूसरा अनाज का व्यापारी है। हरेक के पास तोलने के अलग अलग यंत्र हैं। वैसे हीं आत्मा का वास्तविक धर्म है उसमें विसंगति नहीं है। विसगति है सोचने समझने के तरीके में। आप ऊपर से सुनते हैं अतर से नहीं सुनते। यही कारण है कि लक्ष स्थिर नहीं होता यदि होता तो स्वत: प्रश्न समाहित हो जाता।

जहा तक सख्या का सवाल है डालडा असली घी से ज्यादा बिकता है। असली घी खरीदनेवाले थोडे लोग होते है उसी प्रकार उच्च धर्मवालों की संख्या कम होती है। आज खोज का युग है। आज सोचनीय बात यह है कि आप लोग जो जन्म जात जैनी है वे लापरवाही से रहे इसलिये जैन धर्म व्यापक और विशाल होते हुए भी अधिक जन सख्या इसको अपना नहीं रहीं है। आपका आचरण भी ऊपरी लेवल पर चल रहा है। हम जो आध्यात्मिक गुरु के पद पर है वे तटस्थ भाव से बता देते हैं कि आप जागृत हो जाओ। जगाना हमारा काम है जागना आपका काम है, यह आपके हाथ की बात है। एक व्यक्ति जगा हुआ सो रहा तो उसको जगाना कठिन है। जो वास्तविक नींद ले रहा है उसको जगाना कठिन नही हैं। मनुष्य दो प्रकार के आदर्श रखता है उपर से कुछ और है और मन में कुछ और है। यही कारण है कि आप जैन धर्म के सिद्धान्तो की सूक्ष्मता में प्रवेश नहीं कर पाते हैं और उसके अभाव में उसका प्रचार नहीं हो पाता है।

प्रश्न ७९.: जिज्ञासु नलिनी नाहटा: आचार्य और अरिहन्त में क्या फर्क है? अरिहन्त और सिद्ध में क्या फर्क

है? अरिहन्त और सिद्ध होने के लिये क्या साधु होना आवश्यक है?

उत्तर : इस एक प्रश्न में अनेक प्रश्न है। उत्तर देने से पहले आप नमस्कार मंत्र को ख्याल में ले लें। नमस्कार मत्र का पाचवा पद है णमो लोए सव्व साहूणं। साधु उसको कहते हैं जो पाच महाव्रतों का अच्छी तरह से पालन करता है, तीन करण तीन योग से पालन करता है। हिंसा करता नहीं, कराता नहीं, करनेवाले का अनुमोदन नहीं करता, मन से, वचन से काया से। इसी तरह से अन्य चारों महाव्रतों का जो पालन करता है वह साधु है। वह साधु जब विशेष अध्ययन कर लेता है, दूसरों को अध्ययन करवाता है तब साधु से आगे बढ कर उसको उपाध्याय पद दिया जाता है। वह उपाध्याय जब विशेष ज्ञाता होता है ज्ञान, दर्शन और चारित्र में सपन्न बनता है चतुर्विध संघ का संचालन करने की जिसमें योग्यता होती है उसको तीसरा आचार्य पद दिया जाता है। साधु सत्ताईस गुण, उपाध्याय पच्चीस गुण और आचार्य छत्तीस गुणों का धारक होता है। इनसे आगे बढकर जो अनन्त ज्ञान, दर्शन और चारित्र गुण को धारण करते हैं, वह आचार्य से आगे अरिहन्त पद धारण करते हैं उनको केवल ज्ञान उपलब्ध होता है वे अरिहन्त कहलाते हैं। अरिहन्त पद में रहते हुए जो सम्पूर्ण कर्मों को नाश कर डालते हैं, जिनके फिर कर्म बंधन नही होता। ऐसी स्थिति जिनकी बनती है वे अरिहन्त से सिद्ध बन जाते हैं वे संसार में वापिस नहीं आते। केवल ज्ञान के बाद जो इस भूमंडल में विचरण करते हैं तब अरिहन्त कहलाते है और जब वे इस शरीर से मुक्त हो जाते हैं तब सिद्ध हो जाते हैं।

प्रश्न ८०. : साधु मार्गी संघ जब स्वतंत्र संस्था है तो उसमें उपाध्याय पद खाली क्यों है?

उत्तर : प्रश्न आपका बहुत अच्छा है, जैसा अभी विवेचन आपके सामने आया, नमस्कार मंत्र के पाच पद है। पाचों पदों की अपनी अपनी गरिमा है—महत्ता है। साधु मार्गी संघ यों देखा जाय तो प्राचीन

नाम है। स्थानक वासी बहुत वाद का नाम है। इस रूप में संपूर्ण जैन समाज को साधु मार्ग कह सकते हैं क्यों कि मूल में साधु मार्ग बताया है। पाच पदों में ४ पद साधु के हैं। अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय और साधु अरिहन्त, आचार्य और उपाध्याय भी साधु हैं। सर्वतोमहान साधु है अरिहन्त। इनका बताया हुआ मार्ग साधु मार्ग है। यह कोई स्वतंत्र संप्रदाय हो यह बात नहीं हैं। यह बाद की परपरा नही हैं। मूल में साधुमार्ग परपरा ही है। इस में उपाध्याय क्यों नहीं है यह प्रश्न है। उपाध्याय की आवश्यकता तब होती है जब साधु साध्वियों की बहुत अधिक सख्या हो और उन्हें विशेष रुप से अध्ययन करना हो। अध्ययन का कार्य जहा आचार्य स्वय देखते हैं वहा दोनों पद एक ही के अधीन होते है। जैसे राजनीतिक क्षेत्र में प्रधान मंत्री कई अन्य मत्रियो का कार्य भो सभालते है। इस परपरा में उपाध्याय और आचार्य का पद एक ही के आधीन चल रहा है।

प्रश्न ८१.: जिज्ञासु श्रीरमेश शाह : मानव सेवा प्रभु सेवा बताई गई है तो क्या धार्मिक क्रियाएं करके सिर्फ अपनी आत्मा के उत्थान क लिये काय करना स्वार्थीपना नहीं है?

उत्तर. मानव सेवा प्रभु सेवा हैं, यह एकान्त सत्य नहीं है मानव शरीर में और अन्य प्राणियों के शरीर में आत्मा है। आत्म शक्ति ईश्वर जैसी है। साधु बन गया तो साधक अवस्था में आने के बाद व्यक्ति ६ काया की हिंसा नहीं करता अर्थात् प्राणी मात्र की रक्षा करता है, केवल मानव सेवा ही नहीं करता प्राणिमात्र की सेवा करता है। वह तप संयम की साधना करके आत्म कल्याण करता है। साधु जीवन में विश्व कल्याण करता है और गृहस्थ जीवन में मानव सेवा कर सकता है दूसरे प्राणियों की सपूर्ण सेवा नहीं कर सकता।

प्रश्न ८२.: जिज्ञासु श्रीमती रोशनदेवी खाविया· महिलाएं केवल ज्ञानी हो सकती हैं, महिलाएं मोक्ष को प्राप्त कर सकती हैं तो आचार्य पद पर आसीन क्यों नहीं हो सकती?

उत्तर : यह प्रश्न मौलिक है। अनेकों के दिमाग में उठनेवाला है। प्रश्न है जैन दर्शन के अनुसार महिलाए मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं तो आचार्य पद इनको क्यों नहीं मिल सकता ? मनोविज्ञान की दृष्टि से देखें तो नारी हृदय कोमल होता है, भाव प्रधान होता है। नारी में समर्पण भावना अधिक होती है। पुरुष में अनुशासन क्षमता विशेष होती है, नारी में इतनी नहीं होती। आचार्य वह व्यक्ति बन सकता है जो चतुर्विध संघ को एक अनुशासन और नियन्त्रण में लेकर चल सकता हो। नारी में यह क्षमता नहीं आ सकती। मूल रूप में अनुशासन क्षमता जैसी पुरुष में होती है वैसी नारी में नही होती। इस दृष्टि से आचार्य पद पुरुष को ही मिलता है।

वैसे आप कह सकते है कि नारी में भी अनुशासन क्षमता होती है जैसे—इन्दिरा गाधी। किन्तु यह अपवाद है। ऐसा क्वचित होता है और वह भी तब जब कि उस नारी में पौरुषत्व के गुण आ जाए जैसा कि महारानी लक्ष्मीबाई के लिये आप बोलते हैं—खूब लड़ी मरदानी तो वो तो झांसी वाली रानी थी—यहा उसको मरदानी विशेषण लगाया है अर्थात—उसमे पौरुषत्व की प्रधानता थी।

इसके अलावा आचार्य को चतुर्विध सघ की आलोचना सुननी पड़ती है। कुछ आलोचनाए ऐसी होती है जो नारी के सामने नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से भी आचार्य पद पुरुष को ही मिल सकता है।

एक बात और है आचार्य को कभी प्रसंग आने पर तीन दिन तक एकाकी साधना में भी संयुक्त होना पड़ता है और नारी को एकाकी साधना का निषेध है।

दिनांक २-९-१९८४

प्रश्न ८३ : जिज्ञासु प्रेमलता कोठारी : यह माना जाता है कि इस संसार में आत्मा अनन्त हैं किन्तु इस अनन्त आत्मा

की भी निश्चितता है अर्थात् नवीन आत्मा का उदय नहीं होता है. और यह भी निश्चित है कि भवी आत्मा अनन्तानन्त काल के भी पश्चात् मुक्ति प्राप्त करेगी। तो फिर यह भी निश्चित माना जा सकता है कि अनन्तकाल के पश्चात् इस ससार में भवी आत्मा का लोप हो जायेगा? यदि नहीं तो क्यों?

तीर्थंकर देव ने अनन्त आत्माएं बताई हैं। कोई आत्मा नये सिरे से पैदा नहीं होती, नये सिरे से विकास नहीं होता है केवल पर्यायें बदलती है। आत्मा कभी मनुष्य से देव योनि में जाती है, नरक या तिर्यंच में जाती है और इन योनियों मे से निकल कर कभी मनुष्य योनि में आ जाती है। आजका समय कल भूत में चला जायेगा। ऐसे कितने दिन, महीने, वर्ष भूत में गये हैं, इसका गणित कर सकते हैं क्या? भविष्य से भूत में गये तो भविष्य में कमी हुई? ऐसे ही आगे वर्तमान में आकर भूत में जायेगा किन्तु क्या भविष्य कभी खाली होगा? इसी प्रकार अनन्त आत्माओं के मोक्ष मे चले जाने पर भी भव्य आत्माओं मे संसार खाली नहीं होगा। क्योंकि जिसकी सख्या अनन्त है उसका अन्त कैसे आ सकता है? दूसरी बात सभी भव्यात्माएं मोक्ष में जाएंगे ही यह भी नियम नहीं है। जैसे समस्त मिट्टी में घडा बनने की योग्यता है किन्तु सभी का घड़ा नहीं बनता।

प्रश्न ८४.: जिज्ञासु श्री अशोक ओस्तवाल: मनुष्य का पूर्व जन्म होता है तो उसे पूर्व जन्म यादें कैसे रह जाती है, जब कि उसे उसकी मृत्यु से जन्म के बीच के समय की कोई जानकारी नहीं होती है। तो उस समय उसकी आत्मा कहां रहती है?

कई जगह मरते समय शरीर पर घाव या कोई बीमारी होती है तो वह जन्म के समय भी मौजूद होती है, ऐसा कैसे होता है?

क्या किसी मृत व्यक्ति की आत्मा से बात करना संभव है? यदि संभव है तो उस समय उस आत्मा की योनि कौनसी होती है?

उत्तर : कई मनुष्यों को पूर्व जन्म का विज्ञान होता है-जाति स्मरण ज्ञान से, यह साधारण श्रेणी का ज्ञान है। यह उस व्यक्ति को होता है जिसने संज्ञी पंचेन्द्रिय का जन्म लिया है। पूर्व जन्म में चैतन्य देव ने क्या किया था इसकी स्मृति जाति स्मरण ज्ञान से होती है। जन्म के कुछ समय बाद तक यह स्मृति रहती है। इसके पश्चात् धीरे-धीरे उसकी विस्मृति हो जाती है। फिर तो आज से दस दिन पूर्व आपने क्या खाया यह भी याद नहीं रहता। यह भूलना इसलिये होता है कि हमारी बुद्धि या एनर्जी दूसरे कार्यों में लग जाती है, इसलिये पूर्व की स्मृति पर पर्दा आ जाता है। आपने देखा होगा कि नन्हा बच्चा, जिसने अभी माता पिता को समझा नहीं है, अपने आप ही कभी हंसता है, कभी रोता है, इसका कारण पूर्व जन्म के संस्कार उसको याद आते हैं। जब वह इस जन्म को समझने लगता है, माता पिता को समझने लगता है तब पूर्व जन्म के संस्कार दबने लगते हैं और बच्चा फिर पुरानी स्मृति भूल जाता है। आज प्राय: बडे व्यक्ति को अपना पूर्व जन्म याद नहीं आता। इसका कारण यह है कि जाति स्मरण ज्ञान अधिकांशतया छोटे बच्चे को होता है। मनोवैज्ञानिक अपनी खोज के आधार पर कभी कभी तीन भव तक की बात जान लेते हैं कि इस शरीर के पूर्व में पंचेन्द्रिय रूप में मैं क्या था। एकेन्द्रिय के रूप में रहा है तो उसको याद नहीं रहता; क्योंकि इस ज्ञान के लिये मन की शक्ति चाहिये।

आपके प्रश्न का दूसरा पॉइन्ट है मृत्यु के बाद नये जन्म की बीच की स्थिति कैसी होती है? इस विषय में इतना ही समझें कि आत्मा यहां से मृत्यु के तुरन्त बाद नये शरीर में प्रवेश कर जाती है, जहां कि उसे जन्म लेना होता है। बिना शरीर के कोई आत्मा नहीं रह सकती।

आज जितने हायर सेकेन्डरी से ऊपर की परीक्षा पास करती है उसको यदि हायर सेकेन्डरी का परीक्षा पत्र दिया जाय तो क्या वह परीक्षा

देकर उत्तीर्ण हो सकेगा ? नहीं हो सकेगा। उसे पुन उस विषय को पढना पड़ेगा क्यों कि पूर्व की सारी बात, सारा परीक्षा कोर्स पटाक्षेप में चला गया। अतः वह नया अध्ययन करके ही परीक्षा दे सकेगा। वैसे ही यदि कोई चाहे कि मुझे अपना पूर्व जन्म देखना है तो इसके लिये जो विधि है उसे अपनावे तो देख सकता है।

आपके प्रश्न का तीसरा पहलु है–

मरते समय जिसके शरीर पर घाव था वह इस जन्म में कैसे रह जाता है?

घाव का प्रसग माता के संस्कार से होता है। मन्दसौर में एक माता का होठ कटा हुआ है तो उसकी सन्तान का होठ भी जन्म के समय से कटा हुआ है। ये माता पिता के आनुवंशिक सस्कार होते हैं लेकिन पूर्व जन्म से नहीं आते। किसी बालक के शरीर पर जन्म के समय रिसता हुआ घाव है तो वह बीमारी की स्थिति के कारण है। इस जन्म का शरीर इस जन्म के माता पिता से सबंधित है।

प्रश्न ८५. : जिज्ञासु श्री अशोक ओस्तवाल : क्या आत्मा से बातकी जा सकती है?

उत्तर : बिना शरीर के तो की नहीं जा सकती। शास्त्रकारों का कथन है कि देव योनि के देव इतने सक्षम हैं कि उनके शरीर को आप देख नहीं सकते, लेकिन वे अदृश्य रूप में आकर आपको पूर्व जन्म का हाल बता सकते हैं। व्यंतर जाति के देव अदृश्य रूप में संकेत दे सकते हैं तथा वे अदृश्य रूप मे रहकर आप से बात भी कर सकते हैं।

प्रश्न ८६. : जिज्ञासु श्रीमती अगतकंवर. टैप में सामायिक प्रतिक्रमण भर दिया जाय और उसके माध्यम से सामायिक प्रतिक्रमण करें तो उसमें क्या दोष है?

उत्तर : बहिन को ख्याल रखना चाहिये कि सामायिक ग्रहण की है उसका प्रत्याख्यान करेमि भंते के पाठ से किया है। ४८ मिनिट के लिये सावद्य योग का त्याग किया है। पाप के योग का और पाप की प्रक्रिया

का त्याग किया है। किसी प्रकार के जीव की हिंसा करूं नहीं दो करण तीन योग से। टेप में बिजली का प्रयोग होता है। शास्त्रकारों ने बिजली में तेउकाय के जीव माने हैं। इसलिये उनका घात करनेवाले बनते हैं। टेप में प्रतिक्रमण सुनतें हैं। तो साम।यिक में दोष लगता है, सामायिक नहीं की जा सकती। माइक से व्याख्यान सुनते हैं तो भी सामायिक करनेवालों को दोष लगता है।

प्रश्न ८७. : जिज्ञासु श्री सुरेश कुमार नरक के जीव किस प्रकार कर्मों की निर्जरा करते हैं ?

उत्तर : जीव नरक योनि में कष्ट पाता है तब पश्चाताप करता है कि मैंने बहुत बुरा कार्य किया, जिसके कारण यहा आकर यह दुख भोग रहा हूँ। अब ऐसा नहीं करूगा। पश्चाताप करने से बंधन कटते हैं। नरक की जितनी अवधि है उतना तो वहा रहना पड़ेगा, लेकिन पश्चाताप करने से पुण्यवानी बन्ध सकती है। वहा से निकलने के बाद मनुष्य योनि मिल सकती है।

प्रश्न ८८. : जिज्ञासु श्री. शरत : क्रमबद्ध पर्याय की बात क्या हृदय में उतरने जैसी और आचरण करने जैसी है या नहीं ? कृपा करके समझाइये ?

उत्तर : क्रम बद्ध पर्याय की बात आपने किसी पुस्तक में पढी होगी। उसका तात्पर्य आप अच्छी तरह से नहीं समझ पाये होंगे। क्रम बद्ध पर्याय की बात भगवान् महावीर ने नहीं कही। यह पीछे के विद्वानों की उपज है। भगवान ने इसके विपरीत कहा है जो कर्म तुमने बाधे हैं, पहले बाधे हैं, या बाद में बाधे हैं, यदि मजबूती से बंधे हुए नही हैं, तो जो कर्म इस जन्म पर्याय में करोडों वर्ष बाद भोगे जाने वाले थे उनको आज भोग सकते हैं। पुरुषार्थ के बल पर ऐसा कर सकते हैं। हम में यह क्षमता है। हमारा जीवन स्वतंत्र है। क्रम बद्ध पर्याय से भोगा जाय यह नहीं है। ८ वें गुण स्थान के बाद जो करोडों वर्ष बाद भोगनेवाले कर्म थे वे आज भोगे जा सकते हैं।

प्रश्न ८९. : जिज्ञासु श्री. शरत : मरीचि का जीव चौबीसवा तीर्थंकर बनेगा, यह बात समझ में नहीं आ रही है।

उत्तर : प्रभुने केवलज्ञान की दृष्टि से कहा। अनन्त भवों तक ससार में रूलनेवाला जीव पुरुषार्थ करेगा तो उसके बध कटेगें। मरीचि का जीव आगे चलकर प्रभु महावीर के रूप में तीर्थकर बना है। वीतराग प्रभु की वाणी कभी मिथ्या नहीं हो सकती है। प्रभुने कहा है-हर क्षेत्र में पुरूषार्थ काम आता है। मनुष्य जीवन इतना स्वावलम्बी है कि चाहे जैसा बन सकता है। हलके कर्म बधन पुरुषार्थ के जोर से उड़ सकते हैं। यह सब हमारे हाथ में है।

प्रश्न ९०. : जिज्ञासु श्री जौहरीलाल जैन : अन्तगढ सूत्र में ५२ करोड़ जैन संख्या बताई वह किस आधार पर सही है, जब कि आज भारत की आबादी ७० करोड़ है?

उत्तर : करोड शब्द यह संख्या विशेष है। ५२ करोड़ यादवों का प्रश्न वैसा ही है जैसे एक अरबपति की बात है। क्या सारी संपत्ति उस अरब पति के पास में रहती है? नहीं। सब तरफ व्यापारादि में बिखरी रहती है। यादव तीन खंड के राज्य में बिखरे हुए थे, इसलिये इतनी संख्या हो तो भी आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि वे तीन खण्ड आज के विश्व से भी बहुत अधिक विस्तृत थे।

प्रश्न ९१. : जिज्ञासु श्री शान्तिभाई : क्या साधक जीवन के लिए मुहपत्ति हर दम आवश्यक है?

उत्तर : सम्यग् दृष्टि के लिये हरदम मुहपत्ति बंधने का विधान नहीं है। यह पहली भूमिका श्रावक व्रत, बाहर व्रत सामाइक व्रत के साथ जुडती है। जब तक सामायिक में है तब तक बांधना जरूरी है। क्योंकि सामायिक में छोटे-से-छोटे जीव की हिंसा नहीं करनी है। इसलिये आवश्यक है। सत जन जीवन भर की सामायिक लेकर चलते हैं। यदि सन्त खुले मुंह

का त्याग किया है। किसी प्रकार के जीव की हिंसा करूं नहीं दो करण तीन योग से। टेप में बिजली का प्रयोग होता है। शास्त्रकारों ने बिजली में तेउकाय के जीव माने हैं। इसलिये उनका घात करनेवाले बनते हैं। टेप में प्रतिक्रमण सुनते हैं। तो सामायिक में दोष लगता है, सामायिक नहीं की जा सकती। माइक से व्याख्यान सुनते हैं तो भी सामायिक करनेवालों को दोष लगता है।

प्रश्न ८७.: जिज्ञासु श्री सुरेश कुमार: नरक के जीव किस प्रकार कर्मों की निर्जरा करते हैं?

उत्तर: जीव नरक योनि में कष्ट पाता है तब पश्चाताप करता है कि मैंने बहुत बुरा कार्य किया, जिसके कारण यहा आकर यह दुख भोग रहा हूँ। अब ऐसा नहीं करूगा। पश्चाताप करने से बंधन कटते हैं। नरक की जितनी अवधि है उतना तो वहा रहना पडेगा, लेकिन पश्चाताप करने से पुण्यवानी बन्ध सकती है। वहा से निकलने के बाद मनुष्य योनि मिल सकती है।

प्रश्न ८८.: जिज्ञासु श्री शरत: क्रमबद्ध पर्याय की बात क्या हृदय में उतरने जैसी और आचरण करने जैसी है या नहीं? कृपा करके समझाइये?

उत्तर: क्रम बद्ध पर्याय की बात आपने किसी पुस्तक में पढी होगी। उसका तात्पर्य आप अच्छी तरह से नहीं समझ पाये होंगे। क्रम बद्ध पर्याय की बात भगवान् महावीर ने नहीं कही। यह पीछे के विद्वानों की उपज है। भगवान ने इसके विपरीत कहा है जो कर्म तुमने बांधे हैं, पहले बांधे हैं, या बाद में बांधे हैं, यदि मजबूती से बंधे हुए नहीं हैं, तो जो कर्म इस जन्म पर्याय में करोडों वर्ष बाद भोगे जाने वाले थे उनको आज भोग सकते हैं। पुरुषार्थ के बल पर ऐसा कर सकते हैं। हम में यह क्षमता है। हमारा जीवन स्वतंत्र है। क्रम बद्ध पर्याय से भोगा जाय यह नहीं है। ८ वें गुण स्थान के बाद जो करोडों वर्ष बाद भोगनेवाले कर्म थे वे आज भोगे जा सकते हैं।

प्रश्न ८९.: जिज्ञासु श्री. शरत: मरीचि का जीव चौबीसवां तीर्थंकर बनेगा, यह बात समझ में नहीं आ रही है।

उत्तर: प्रभुने केवलज्ञान की दृष्टि से कहा। अनन्त भवों तक संसार में रूलनेवाला जीव पुरुषार्थ करेगा तो उसके बंध कटेंगें। मरीचि का जीव आगे चलकर प्रभु महावीर के रूप में तीर्थंकर बना है। वीतराग प्रभु की वाणी कभी मिथ्या नहीं हो सकती है। प्रभुने कहा है-हर क्षेत्र में पुरूषार्थ काम आता है। मनुष्य जीवन इतना स्वावलम्बी है कि चाहे जैसा बन सकता है। हलके कर्म बंधन पुरुषार्थ के जोर से उड़ सकते हैं। यह सब हमारे हाथ में है।

प्रश्न ९०.: जिज्ञासु श्री जौहरीलाल जैन: अन्तगढ सूत्र में ५२ करोड़ जैन संख्या बताई वह किस आधार पर सही है, जब कि आज भारत की आबादी ७० करोड़ है?

उत्तर: करोड शब्द यह संख्या विशेष है। ५२ करोड़ यादवों का प्रश्न वैसा ही है जैसे एक अरबपति की बात है। क्या सारी संपत्ति उस अरब पति के पास में रहती है? नहीं। सब तरफ व्यापारादि में बिखरी रहती है। यादव तीन खंड के राज्य में बिखरे हुए थे, इसलिये इतनी संख्या हो तो भी आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि वे तीन खण्ड आज के विश्व से भी बहुत अधिक विस्तृत थे।

प्रश्न ९१.: जिज्ञासु श्री शान्तिभाई: क्या साधक जीवन के लिए मुहपत्ति हर दम आवश्यक है?

उत्तर: सम्यग् दृष्टि के लिये हरदम मुहपत्ति बंधने का विधान नहीं है। यह पहली भूमिका श्रावक व्रत, बाहर व्रत सामाइक व्रत के साथ जुडती है। जब तक सामायिक में है तब तक बांधना जरूरी है। क्योंकि सामायिक में छोटे-से-छोटे जीव की हिंसा नहीं करनी है। इसलिये आवश्यक है। संत जन जीवन भर की सामायिक लेकर चलते हैं। यदि सन्त खुले मुह

बोलते हैं तो वे अपनी प्रतिज्ञाओं को भंग करते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से मुह की भाप वायु के जीवों के लिये गोली का काम करती है। बाहर की हवा मुंह के अन्दर आती है तो उसके साथ छोटे जीव भी अन्दर जाते हैं, इससे व्यक्ति अपनी हिंसा तो करता ही है और दूसरों की भी हिंसा करता है।

प्रश्न ९२ : जिज्ञासु श्री शान्ति भाई : सम्यक्त्व के बारे में प्रकाश डालिये।

उत्तर : पहली कक्ष में जो अ, आ आदि वर्णमाला सीखी है वह अन्तिम अध्ययन तक रहेगी। वह पुस्तक पढ़ना सीखेगा तब भी वही वर्णमाला रहेगी इसी तरह सम्यक्त्व, साधु अवस्था तक चलेगा। सम्यक्त्व साधना की प्रथम सीढी है। सम्यक्त्व के अभाव में किसी भी प्रकार की साधना सम्यक साधना नहीं बन सकती। अतः जैन धर्म में सम्यक्त्व का बहुत अधिक महत्व माना गया है। इस विषय में विस्तृत विवेचन अल्प समय में सम्भव नहीं है।

प्रश्न ९३. : जिज्ञासु श्री. भंवरलाल गोखरू : भगवान् महावीर ध्यान करते समय मन में किसका चिन्तन करते थे ?

उत्तर : प्रश्न मौलिक है। यह चेतन अगडाई ले और भगवान द्वारा अनुभूति से बताये हुए मार्ग का अनुसरण करे तो ज्ञात हो सकता है कि वे किसका ध्यान करते थे। वे मुख्यतया सत्, चित् आनदघन का समीक्षण ध्यान करते थे। आगमों में स्थान-स्थान पर उल्लेख है 'एक पुग्गल निविटठ दिठिए' एक तत्व पर उनकी दृष्टि केन्द्रित होती थी और वह तत्व है चैतन्य देव।

प्रश्न ९४. . जिज्ञासु श्री हरीसिंह नलवाया : मोक्ष और सिद्ध का स्वरूप कैसा है? समझावें :

उत्तर : आप मेवाड़ी हैं, असली घी की डली चखी हो तो उसके स्वाद का वर्णन करिये। सिद्ध अवस्था का अनुभव करना है तो सिद्ध अवस्था में

पहुंचिये। एम, ए का अध्ययन हथेली पर रख कर नहीं बता सकते। वैसे ही सिद्ध स्वरूप का कथन नहीं किया जा सकता। वे सदा-सदा के लिये परम शान्ति में विराज रहे हैं। उनके लिये शास्त्र कारों ने कहा अपयस्स पय 'नात्थि' अर्थात् उस स्वरूप का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

प्रश्न ९५.: क्या कारण है कि मनुष्य देव देवियों से डरते हैं?

उत्तर: मनुष्य के अन्दर जीवन में रहनेवाले चैतन्य का खयाल नहीं है, वह मन की कल्पनाओं में उलझा रहता है। मनुष्य के मन की कमजोरिया, सद् ज्ञान का अभाव और अज्ञान की स्थिति ही उसे डराती है। देवी-देवताओं का डर तो एक मानसिक भ्रम मात्र है। उसका मनोबल तीव्र हो तो वह देवी देवताओं और भूत प्रेतों से डरनेवाला नहीं है। उसकी मानसिक कल्पनाएं ही उसे डरा रही हैं।

प्रश्न ९६ : जिज्ञासु ममता-मनुष्य को अगले जन्म में भी मनुष्य ही बनना हो तो क्या करना चाहिये?

उत्तर आने वाले जीवन में पुन. मनुष्य बनना हो तो इस जीवन में मनुष्य मात्र के साथ सद् भावना रखे। सभी के साथ सरलता का व्यवहार करे माया-छल-प्रपंच्य से दूर रहे, अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखे और सम्यग्दृष्टि भाव में रमण करे तो पुन मानव जीवन प्राप्त हो सकता है।

दिनाक १६-९-८४

प्रश्न ९७.: जिज्ञासु श्री अशोक ओस्तवाल: चौवीसों तीर्थंकरों के मुहपत्ति नहीं थी तो क्या उन्हें वायु काय की हिंसा नहीं लगी थी? यदि हिंसा लगी तो वे अहिंसा के अवतार कैसे माने जाते हैं?

दिगम्बर और श्वेताम्बर मन्दिर मार्गी संत सतियां मुहपत्ति नहीं बांधते तो क्या उनके कर्म क्षय नहीं होते हैं? उनको वायु काय की हिंसा नहीं लगती है क्या?

उत्तर : प्रश्न मौलिक है और इस प्रश्न के विषय में आपको चिन्तन करना है। मै आपको संशोधन दे रहा हूं कि प्रश्नकर्ता को यह ख्याल रखना चाहिये कि प्रश्न सिद्धात जानने के लिये हो। किसी व्यक्ति को तुलना में खड़ा करके प्रश्न करना मैं पसन्द नहीं करता। सब मेरे भाई हैं हमको देखना है कि आपका प्रश्न मौलिक हो। तीर्थंकर मुहपत्ति नही बाधते थे, उनको हिंसा थी या नहीं? यह सर्वसामान्य प्रश्न है इसको ठीक तरह से समझें। तीर्थंकर पूर्व के तीर्थंकरों का उपदेश सुनकर तीर्थंकर नहीं बनते। पहले जो हो गये उनके शास्त्रों को मान्य करके नहीं चलते, प्रत्येक नये रूप में स्वतंत्र साधना में उतरते है। जैसे ही वे साधना की स्थिति में पहुंचते है प्रायः मौन व्रत अगीकार करते है बोलने या व्याख्यान देने का प्रश्न नहीं होता। इस साधना मे केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। सारे लोक को देखते है। कहा वायु के जीव हैं, कहा त्रस और स्थावर के जीव हैं। वे उन्हें हाथ की रेखा की तरह देखते हैं। अत वे अपने ज्ञान से जैसे देखने वैसा करते हैं उनके लिये कोई नियम मर्यादा नहीं होती। उन्होंने हमको कहा कि तुमको खुले मुह नहीं बोलना है। भगवान ने कहा कि सावध योग का त्याग करो खुले मुह बोलना सावद्य भाषा मानी गई है। एक रूपक से समझिये एक डॉक्टर के पास एक मरीज आया। डाक्टर ने निदान करके कहा कि तुम को टी. बी. की बीमारी है अतः यह औषधि लेनी है, तुम ठीक हो जाओगे। मरीज कहता है कि जो औषधि आप मुझे बता रहे हैं, यह आपने खाई या नहीं? यदि आपने यह औषधि नहीं ली है, तो मैं भी नहीं लूंगा। डाक्टर ने औषधि बताई वह मरीज के लिये है न कि स्वय डाक्टर के लिये। डाक्टर को औषधि लेना जरूरी नही है।

वैसे ही एक परिवार का मुखिया घूमने निकला। जंगल में रास्ता भूल गया संध्या का समय आ गया। वह सोचता है कि इस विकट बन

में रात्रि के समय सारे परिवार को लेकर घूमेगा तो सारा परिवार जंगली जन्तुओं का शिकार हो जायगा। वह पहाड़ी पर चढ़ता है, कपड़े उतार कर लगोट कसता है और एक वृक्ष पर चढ़ कर देखता है कि उधर से मोटर आ रही है। अतः उधर मार्ग होना चाहिये। वह नीचे उतर कर परिवारवाले से कहता है कि उधर चलो रास्ता उधर है। तो क्या परिवारवाले उसको यह कहेंगे कि आप पहाड पर गये थे कपड़े उतार कर लगोट कसी थी ऐसा ही हम भी करेंगे? तो क्या यह उनके लिये ठीक रहेगा? वे बताये हुए रास्ते पर नही चलेंगे तो उस जंगल में समाप्त हो जायेंगे।

यह ससार रूपी अटवी है। तीर्थंकर भव्य प्राणियों को रास्ता बता रहे है वे परिपूर्ण विकास–केवलज्ञान की अवस्था को लेकर चलते हैं। यदि ऐसी परिपूर्ण अवस्था हमारी भी बन जाय तो हम भी उनका अनुकरण कर सकते हैं। अन्यथा हम उनके बताये हुए मार्ग पर चलें, यही हमारे लिये श्रेयस्कर है तीर्थंकर क्या करते थे यह हमारे सोचने का विषय नही है, उन्होंने क्या कहा यह हमारे सोचने–आचरण करने का विषय है।

प्रश्न ९८ : जिज्ञासु श्री पन्नालाल चोरडिया मन और आत्मा में क्या अन्तर है?

उत्तर : यह समझने का विषय है। मन और आत्मा एक दृष्टि से देखा जाय तो कार, कार का मालिक और चलानेवाला ड्राइवर इनमें आपस में क्या सम्बन्ध है? कार सपत्ति के रूप में मालिक की है, ड्राइवर मालिक की आज्ञा के अनुसार कार्य करे। उसी तरह से यह शरीर रुपी कार है। मालिक के तौर पर आत्मा है। आत्मा इस द्रव्य मन को ओर्डर देते है। आत्मा स्वामी है, मन ड्राइवर है। आत्मा के अभिप्राय के अनुसार आत्मा मन पर कंट्रोल रखती है। यदि आत्मा ने मन पर कंट्रोल नही रखा तो मन जैसा चाहेगा वैसा करेगा। भावमन आत्मा का एक मौलिक गुण है। इस रूप में आत्मा और मन कथञ्चित भिन्न है और कथंञ्चित अभिन्न द्रव्यमन पौद्‌गलिक है अतःभिन्न है और भाव मन अभिन्न।

प्रश्न ९९. : जिज्ञासु वर्धमान भाई एम दोशी : देव अरिहन्त, गुरू निर्गंथ केवली प्ररूपित धर्म। यह तीन शरणों का भवोभव शरण हो जो। यदि साधक ने गुरू निश्चित किया उस समय वे गुरू वीतराग देव-प्ररूपित धर्मानुसार प्रवरते थे। बाद में गुरू देवों में वीतराग देव की आज्ञा में कोई शिथिलता आ गई तब साधक को क्या करना चाहिये? क्या दूसरा गुरू धार सकता है?

उत्तर : बन्धुओ, वीतराग देव ने व्यक्ति को नहीं बताया उन्हों लक्षण बताये हैं। देव, अरिहन्त और सिद्ध, गुरू निग्रंथ होते है जो १८ पापों से निवृत्त होने की स्थिति में रहे ऐसे लक्षण बताये। कदाचित ऐसे लक्षण वाले व्यक्ति नहीं रहे और ऐसे लक्षणवाला यदि अन्य गुरू मौजूद है, शासन को संभालने योग्य है तो गुरूपद के लिये उपयुक्त हो जाता है जो वीतराग ने मार्ग बताया, यदि कोई साधक उससे नीचे आ गया तो फिर वह गुरू कैसे माना जा सकता है? वह गुरू पद के योग्य नहीं रहा। जैन धर्म मे व्यक्ति को गौण करके पद के लक्षण बताये है उसी के अनुसार मान्यता होती है।

प्रश्न १०० : जिज्ञासु श्री हस्तीमल : धर्म क्या है?

उत्तर : धर्म वह है जो सब के लिये हितकर हो हम दुखी है, हम चाहते है कि हमारी कोई सहायता करे, तो दूसरों की भी सहायता करना हमारा धर्म बन जाता है। हमारे सामने जो सत्य बोले वह अच्छा लगता है। झूठ बोलनेवाला अच्छा नहीं लगता है तो याद रखिये कि हम भी किसी के साथ झूठ का व्यवहार नहीं करे वह धर्म जान गया। जो मैं अपने लिये चाहता हूं वही अन्य के लिये भी चाहू वह धर्म बन गया। वैसे मूल रूप में वस्तु का स्वभाव धर्म है। आत्मा का स्वभाव निर्मल है, निश्चल है, परिपूर्ण समतामय है, साधनागत है। परिपूर्ण अहिंसा साधनागत धर्म है।

प्रश्न १०१. : जिज्ञासु श्री बाबूलाल जैन : आठम और चवदस को हरी सब्जी के त्याग होते है, फिर भी निम्बू

इमली, लाल टमाटर, सेव, केला आदि का भी प्रयोग किया जाता है तो क्या यह हरी लीलोतरी में नही गिनी जायेगी। तीन दिन वासी तो और भी सड़ गल जाती है तो फिर उपयोग में लेना चाहिये या नहीं ?

उत्तर : देखिये त्याग में दो बाते है। यदि वह त्याग करे कि हरी मात्र मुझे नही लेनी है सचित जीव युक्त हरी और निर्जीव हरि दोनों नहीं ले सकता। जीव युक्त में कच्ची भिंडी, कच्ची ककड़ी आदि है। पक्का केला निर्जीव हरी है। जितने सजीव और निर्जीव समग्र प्रकारसे त्याग किया है वह नींबू का रस आदि उपर्युक्त वस्तुएं नही खा सकता है। चाहे वे तीन दिन की हो।

प्रश्न १०२. : जिज्ञासु तु श्री कल्पना. जड़ और चेतन में क्या फर्क है ?

उत्तर : बहिन को सवाल करना है कि यह थबा क्या सवाल कर सकता है ? नहीं कर सकता। जिस में उपयोग नहीं, ज्ञान नहीं, चेतना नहीं वह जड़ है जिसमें चेतना है वह चेतन है। जिसमें जीव है वह चेतन है जिसमें जीव नहीं स्व-पद को समझने की क्षमता नहीं वह जड़ है।

प्रश्न १०३. : जिज्ञासु श्री सुभाष पारख : जिस प्रकार मन्दिर मार्गी संप्रदाय को प्रमाणित करने के लिये प्रचुर मात्रा में प्रमाण मंदिरों के रुप में उपलब्ध हैं, जो निर्विवाद है। इसी प्रकार का स्थानकवासी समाज की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिये ठोस प्रमाण उपलब्ध है ?

उत्तर : इस भाई प्रश्न कर्ता को उपस्थित रहना चाहिये। साथ ही प्रश्न में किसी व्यक्ति विशेष को नही लाना चाहिये। मै संक्षिप्त में जानकारी दे देता हू। हमें न स्थानकवासी, न मन्दिर मार्गी, न दिगम्बर समाज के कुछ लगाव है। हम भगवान महावीर के अनुयायी है उन्होंने क्या मार्ग बताया है यह देखना है। उन्होंने जो मार्ग बताया है उसी मार्ग को प्रमाण मान कर चलना है। इतिहास कभी कमजोर होता है,

गया है। उसी तरह से कल्पना कीजिये कि एक पुरुष के चार संतान है पहले नंबर पर पुत्र का चौथे नम्बर पर पुत्री का जन्म हुआ। दूसरे नम्बर की पुत्री विनयशील है, विद्वान है, गुणी है, धर्मी है फिर भी वह पहले नम्बर पर जो उसका भाई है उसको नमस्कार करेगी चाहे वह अनपढ हो।

इसी तरह से आप सोचिये कि तीर्थंकरों के शासन में बड़ा सबसे पहला पुत्र कौन है, पहला पुत्र साधु हैं क्यों कि भगवान ने चार तीर्थ बनाये उनमें पहला स्थान साधु का हैं, दूसरा स्थान साध्वी का है। पहले पुत्र की दृष्टिसे साधु का पद बड़ा है इसलिये वह चाहे एक दिन का ही दीक्षित है और साध्वी ५० वर्ष की दीक्षित है फिर भी साधवी साधु को नमस्कार करती है। मान लिजिये एक बहुत बडा संघ है फिर श्रावक का हैं, उसके बाद श्राविका का है। हजार साधु साधवियां है उनमें से १०० वर्ष के दीक्षित भी हैं और वे शास्त्रों के ज्ञाता हैं, विद्वान हैं, किन्तु उनमें आचार्य पद की योग्यता का अभाव है, जबकि संघ संचालन करने योग्य साधु एक दिन का दीक्षित है। कदाचित उसे अन्य साधुओं के सानिध्य में अध्ययन करना पडे फिर भी उसकी प्रतिभा और संचालन शक्ति अन्यों के मुकाबले मे अन्य सब से अच्छी है तो उसको आचार्य पद दिया जा सकता है, अन्य सब साधुओं को उसके नेतृत्व मे रहना पडेगा। क्योंकि साधु एवं उपाध्याय के पद से यह बडा है।

प्रश्न १०६.: जिज्ञासु विनोद जे वोहरा: गर्भवती स्त्री को साधवी स्पर्श करें तो उसको दोष लगता है या नहीं क्योंकि इस बात का पता नहीं चलता कि गर्भ में लड़का है या लड़की है.

उत्तर: गर्भ की स्थिति अनिश्चित है, बीच में कई पर्दे है इसलिये संगटा नहीं लगता।

प्रश्न १०७. : जिज्ञासु सरला भूरा : क्या शास्त्रों में इसका भी उल्लेख है कि जैन धर्म के सैकड़ों पंथ हो जायेंगे

उत्तर : भगवान ने बताया कि सात तय एक दूसरे की अपेक्षा रख कर चलते हैं तो वे मेरे मार्ग पर चलते हैं। ६ का तिरस्कार करते हैं तो उसके लिये भगवान की आज्ञा नहीं है। इसी दृष्टि से आप प्रश्न का उत्तर समझ लीजिये कि यदि एकान्तिक आग्रह है वह दुर्नय है और उसके अनेक पंथ हो सकते है।

प्रश्न १०८ : जिज्ञासु श्री लालचंद : आज का युग विनाश की ओर क्यों बढ रहा है.

उत्तर : मानव के विनाश की ओर बढने के अनेक कारण है। उनमे प्रमुख है आवश्यकताओं की वृद्धि और अधोगामी वासनात्मक विचार मनुष्य के विचार अधोगामी है तो मानव का आदर्श उनके सामने नही है, हिंसाकारी दृष्य है। जब तक नीचे की ओर देखते रहेंगे तब तक हिंसा के तत्व बनते रहेंगे। ऊर्ध्वगामी बनेंगे सभी विनाश से बचेंगे।

प्रश्न १०९. : जिज्ञासु श्री अशोक पटवा : टेन्शन कम करने का क्या उपाय है ?

उत्तर : आप सामायिक साधना में बठिये, समीक्षण ध्यान करिये, समता की साधना सीखिये, आपका टेन्शन समाप्त हो जायगा।

दिनाक २३-९-१९८४

प्रश्न ११०. जिज्ञासु श्री. अशोक ओस्तवाल : हिन्दी महीनों चैत्र से फाल्गुन व अंग्रेजी महीनों जनवरी से दिसम्बर के नामकरण कब और किस आधार पर हुए, इससे पहले कौन से सन्-संवत् थे ?

उत्तर : अंग्रेजी महीनों की स्थिति तो आपको मालूम ही है। ईसू के समय से ईस्वी सन् महीने व दिन प्रचलित हुए। हिन्दी महीनों का जहा तक सवाल है—चैत्र-वैशाख आदि का वर्णन आगमों मे उपलब्ध होता है, प्रभु ऋषभदेव के जन्म-दिक्षा आदि के प्रसंगोपर इनका उल्लेख है, अतः इस अवसर्पिणि काल की दृष्टि से इसे प्रभु ऋषभ देव के समय से माना जा सकता है। इधर में वीर संवत् भगवान महावीर के समय से चालू हुआ। उसके पश्चात् कुछ शताब्दियों बाद विक्रम संवत् चालू हुआ। इसमें तिथियों और महीनों की घटत-बढत चन्द्र कला से संबंधित है और वह इसी रूप से चल रहा है। वर्तमान में शक संवत् को राष्ट्रीय संवत् स्वीकार किया गया है। इसकी पद्धति अंग्रेजी ईस्वी सन् जैसी है, इसके महीनों में घटत बढत नहीं है। इन महीनों का नामकरण श्रावण, भादवा आदि नक्षत्रों के आधार पर हुआ लगता है। वैसे यह ज्योतिष का विषय है। आप इसका अलग से अध्ययन करें।

प्रश्न १११. : जिज्ञासु श्री. सत्यप्रसन्नसिंह भंडारी : वैदिक अवधारणा में आत्मा और श्रमण विचारधारा में आत्मा मे क्या अन्तर है?

उत्तर : श्री. भंडारीजी का प्रश्न गंभीर है और सब के जानने योग्य है। वैदिक संस्कृति में भी एक मतता नहीं है। वहां भी अनेक मत हैं। एक सिद्धांत यह है कि सब कुछ ब्रह्म रूप है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं 'सर्व खलु इदं ब्रह्मम',

अद्वैतवाद के धरातल पर रामानुजाचार्य आदि के बड़े-बड़े संप्रदाय खड़े हो गये। उनमें भी मत भिन्नता चल रही है मूल-बात यह है कि वैदिक दृष्टि से आत्मा का स्वरूप, में है कि एक ही ईश्वर-आत्मा है। उसी का अंश प्रत्येक मनुष्य और प्राणी में रहा हुआ है। प्रत्येक प्राणी की स्वतंत्र आत्मा का अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार धारणा-विचारणा वैदिक संस्कृति में चल रही है।

श्रमण परम्परा-जैनियों की विचारणा है कि प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा स्वतंत्र है। मनुष्य एक इकाई है उसकी आत्मा परिपूर्ण रूप से

स्वतंत्र है। वह ईश्वर का अंश नहीं है। वह स्वय ईश्वर की शक्ति रखनेवाली परिपूर्ण स्वातंत्र है। किसी के आधीन नहीं है। वह सर्व तंत्र स्वतंत्र हैं। इस दृष्टि से शुभ और अशुभ कर्म करने में अपने आपका अधिकार रखती हैं। बुरा कर्म करती है तो बुरा फल मिलता हैं और अच्छे कर्म करती हैं तो अच्छा फल मिलता हैं। इस जैन दृष्टिकोण से आत्मा स्वतत्र हैं और वैदिक दृष्टिकोण से आत्मा स्वतंत्र नहीं हैं। उसका कथन है- जो कार्य करता है वह ईश्वर करता है और फल भी ईश्वर देता है। यह धारणा चलती है। इस विषय में बुद्धिवादी प्रश्न करते हैं कि जहा ईश्वर ही सब कुछ करनेवाला है वहा ईश्वर सब कुछ जानता है फिर एकसे पाप और दूसरे से धर्म क्यों करवाता है ? एक को सुखी और दूसरे को दुखी क्यों बनाता है ?

आज का युग तर्कवाद का है। आज इस दृष्टि से तर्क उपस्थित होता है तो उसका उत्तर सही नहीं आ सकता। इसके साथ-साथ उनका कहना है कि जब ईश्वर ही सब कुछ करता है तो व्यक्ति का दोष क्यों निकाला जाता है ? यह पापी है, यह धर्मी है जबकि उसने स्वयं ने किया नहीं, इश्वर ने कराया। एक सेठ अपने मुनीम से काम कराता है उसमें नुकसान लगता है,तो सेठ का लगता है। इसी तरह इश्वर करवाता है, व्यक्ति कुछ नहीं करता तो सारा दोष ईश्वर पर चला जाता हैं।

जैन दर्शन यह कहता है कि ईश्वर परम सिद्ध है। वे स्वय न तो कुछ करते हैं न प्रेरणा देते हैं। वे तटस्थ भाव से उपदेश देते हैं कि यह शुभ कार्य है मोक्ष की ओर ले जानेवाला है, इसमें नैतिकता है, इसमें अनैतिकता है। यदि बुरा करोगे तो बुरी गति में जाओगे। अच्छा करोगे तो अच्छी गति मिलेगी। इससे व्यक्ति स्वंय अपना भाग्य निर्माता बन जाता है, व्यक्ति स्वयं अपना कार्य करने लग जाता है। यह प्रत्येक व्यक्ति का प्रश्न है कि आज हम क्या कर रहे हैं ? क्या नहीं कर रहे हैं ? जीवन को नहीं समझने का परिणाम है कि अपना सारा दोष दूसरों पर डालते हैं। जैन सस्कृति यह कहती है कि जो कुछ दोष आ रहा है वह दूसरों का नहीं मूलत : दोष तूमने किया है। दूसरा निमित्त बन सकता है।

वैदिक सस्कृति में आत्मा और परमात्मा में मौलिक अन्तर है। वह कहती है कि ईश्वर ईश्वर ही रहेगा जीवआत्मा जीवआत्मा ही रहेगी। जैन सस्कृति यह कहती है कि प्रत्येक मनुष्य की अपनी धर्म करनी है। अच्छी करनी करे तो वह भगवान तक बन सकता है। राजा लोगों के जमाने में यह नियम था कि राजा का पुत्र ही राजा बनेगा और कोई राजा नहीं बन सकता। उस समय की जनता प्रयास ही नहीं करती थी कि राजा बने। चाहे कितना ही प्रयास करे, राजा का बड़ा पुत्र चाहे कैसा ही क्यों न हो, चाहे अगूठा छाप ही क्यों न हो, पर वही राजा बनेगा। लेकिन आज यह नहीं है कि अमुक व्यक्ति का पुत्र ही राष्ट्रपति बनेगा। आज मानव जाति का कोई भी योग्य व्यक्ति इस पद पर पहुंच सकता है। यदि जनतंत्र को ही विकृत कर दिया जाय तो यह प्रश्न दूसरा है। इसी प्रकार जैन संस्कृति में प्रत्येक आत्मा को भगवान के तुल्य बनने का अधिकार है।

प्रश्न ११२: जिज्ञासु श्री हंसराज जेठाभाई: दुःख में मिनिट भी घंटों जैसा लंबा लगता है और सुख में समय जल्दी बीत जाता है। आइन्सटीन ने यह शोध की है कि आकाश में समय जल्दी पसार होता है तो आकाश और सुख में कोई संबंध रहता है?

उत्तर: यह प्रश्न सबके समजने योग्य है। दुख के समय थोड़ा समय बहुतअ धिक लगता है और सुख में अधिक समय भी छोटा मालूम होता हैं, इसका कारण यह है कि मनुष्य की आत्मा दुःख नही चाहती। यह उसके रूचि का विषय नही हैं। जिस विषय में रूचि नहीं होती उस विषय का कार्यक्रम रहता है तो १५ मिनिट भी दो घंटो जैसे लगते है और जिस विषय में रूचि होती है उसमें दो घंटो का समय भी १५ मिनिट जैसा लगता है।

एक व्यक्ति को श्रम करने के लिये लगाया जाय और श्रम में उसको रूचि नहीं है तो उसके लिये एक घंटा भी भारी पड़ेगा। उसी व्यक्ति को यदि सिनेमा में विठा दिया जाय तीन घंटे भी स्वल्प प्रतीत

होंगे। एक व्यक्ति की गमी हो गई है, उसका दाह सस्कार दूसरे दिन किया जाना है, तो घरवालो के लिये वह रात्रि निकालना बहुत भारी पड़ जायेगा और ऐसा मालूम होगा कि यह रात्रि बहुत बडी हो गई है। दूसरी ओर समझ लीजिये कि कही पर डान्स हो रहा है और कोई महिला डान्स कर रही है, जिसको उसमें रूचि है उसको रात्रि बीत जाना भी थोड़ा मालूम होगा।

आपका प्रश्न है कि आइन्स्टीन ने कहा है कि आकाश में गति करते हैं तो वहा पर घडी का समय छोटा मालूम होता है। यह उनका आपेक्षिक दृष्टिकोण है। वायुमण्डल का प्रभाव चैतन्य तत्व पर पड़ता है वैसे ही कुछ जड़ पदार्थ-यंत्रादि पर भी पड़ता है। अतः आकाश में ज्योंही वायुमण्डल बदलता घडी पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। इसी दृष्टिकोण से आइन्स्टीन का सिद्धात सगत हो सकता है।

प्रश्न ११३.: जिज्ञासु श्री नाथूलाल कांठेड: श्रावकों को सामायिक के लिये वस्त्रादि का और पछेवडी आदि के उपयोग का विधान है जबकि श्राविकाओं के लिये इससे अलग विधान रखा गया है उनके आभूषण आदि का कोई प्रतिबन्ध नहीं रखा गया, ऐसा क्यों?

उत्तर: श्रावक और श्राविका दोनों के लिये जो साधना की पद्धति है वह पद्धति लगभग एक समान लागू होती है। शारीरिक दृष्टि से कुछ अन्तर आ सकता है। सामान्य पद्धति के अनुसार सामायिक में सासारिक वस्त्र नहीं रहने चाहिये। उन वस्त्रों का परिवर्तन और साथ ही जितनी आभूषण आदि वस्तुए शरीर पर है उनको उतार कर घर पर-रख कर सामायिक करना चाहिये। पुरुष जैसे वस्त्रों में बाहर से आते हैं उन्हीं वस्त्रों से सामायिक कर लेते हैं तो जितना लाभ मिलना चाहिये उतना नहीं मिलता। महिलाओं को भी धर्म स्थान में सादगी पूर्ण पहुंचना चाहिये। पूर्व का उदाहरण देखकर समझाऊं इतना समय नहीं है। गुजरती बहिनें प्रायः सादे वस्त्र पहनती हैं। जेवर पहनने का भी

उनमें प्रायः रिवाज नहीं है। गुजराती बहिनों की तरह सादे वस्त्र सामायिक के लिये अलग रखें और उनको पहन कर सामायिक करें। पुरुषों और स्त्रियों के लिये एक-सा विधान है।

प्रश्न ११४. : जिज्ञासु श्री चांदमल : आत्मा भवि है या अभवि इसकी जानकारी साधारण व्यक्ति को कैसे लग सकती है ?

उत्तर : भवि और अभवि का बड़ा लक्षण यह है कि जिसके मन में अनुकंपा हो, दया हो, दुखी प्राणी को देखकर कंप कंपी छुट जाय और इतनी सहानुभूति उत्पन्न हो जाए कि यह दुखी नहीं, मैं दुखी हूं इसका दुख मिटाये बिना मुझे शान्ति नही मिलती। ऐसा स्वभाव जिस व्यक्ति का है वह भवि है।

जिसके स्वभाव मे अनुकंपा नही आई, उसके सामने कोई छटपटा रहा है, हाय-हाय कर रहा है उसको देख कर जिसके मन में कंप कंपी नहीं छुटती उसको अभवि या दुर्भवी समझना चाहिये। उडद के धान होते है। उनमें एक दाना होता है जिसे गोरडू बोलते है, इस गोरडू एक दाने को सिझाने के लिये दस सेर पानी में उसे डाले दिजीये और उस पानी को उबाल कर भले ही भाप बना दीजीये लेकिन गोरडू का एक दाना नहीं सीजेगा। सारे दानों को सेर भर पानी में उबालेंगे तो भी गल कर घुट जायेंगे। जैसा इन दोनो पदार्थो के स्वभाव में अन्तर हैं वैसाही अन्तर भवि और अभवि की आत्मा में हैं। अभवि को हजार उपदेश सुना दिये जाए फिर भी उसे धर्म के प्रति रूचि जाग्रत नहीं होती।

प्रश्न ११५. जिज्ञासु श्री व्रजलालशाह : क्रोध को कौनसी साधना द्वारा जीतें, यह सारांश में बताइये ?

उत्तर : सारांश इतना ही है कि जैसे आग को बुझाने के लिये घी, घासलेट या सूखी लकडियां डालते हैं तो आग अधिक भभकती हैं। पानी डालने से आग बुझती है। इसी तरह से क्षमा रूपी पानी से क्रोध शान्त होता है। एक व्यक्ति आवेश में है उस समय दूसरा व्यक्ति शान्त

रहे तो बात आगे नहीं बढती है। आप जब क्रोध का प्रसंग हो क्रोध के प्रति जागृत हो जाईये–क्रोध शान्त हो जाएगा।

प्रश्न ११६. : जिज्ञासु श्री रमेशकुमार कोटड़िया: जैन धर्म, में मुख्य साधना एक है। फिर भी मन्दिर मार्गी, दिगम्बर, श्वेताम्बर अलग-अलग पंथ क्यों है?

उत्तर : यह सर्वमान्य है कि पानी प्यास बूझानेवाला है, पानी ठंडक देनेवाला है। वह पानी आकाश से शुद्ध गिरता है। अलग–अलग स्थानों पर पहुंचता है। जिस पानी को जिसका सपर्क अधिक मिलेगा वह पानी उसी रूप में ढल जायेगा। बम्बई में समुद्र का पानी है, बम्बई की जनता जो पानी पीती है वह भी पानी है। समुद्र का पानी पीने योग्य इसलिये नहीं रहा, उसमें अन्य पदार्थ मिल गये इसलिये खारा हो गया। शुद्ध रूप में होता तो पीने योग्य होता। आप शुद्धता की दृष्टि से सोचिये। तीर्थंकर भगवान् महावीर के सिद्धान्त शुद्ध पानी की तरह है। अहिंसा परमोधर्म का सिद्धान्त किसी व्यक्ति विशेष के लिये नहीं है, उसे सबको मानना चाहिये और इसी के अनुरूप अपना जीवन ढालना चाहिये। कुछ ढाल पाते हैं, कुछ नहीं ढाल पात हैं, कुछ नहीं ढाल पाते। साधारण लोगों की समझ में भेद नहीं आता। जो भेद देख सकते हैं वे मूल की कसौटी पर कस कर देखें। सिद्धान्त की बात अपने अनुरूप लगे तो उसका पालन करने के लिये हर मन तैयार हो जायेगा। आपको असली सोना चाहिये तो उसकी पहचान करें। बम्बई में सोना–चादी की कितनी दुकानें होंगी! सभी अपनी अपनी दुकानों पर साइन बोर्ड लगाते हैं कि हमारा सोना शुद्ध है। किन्तु खरीदनेवाले पर निर्भर करता है, वह कसोटी लगाकर परीक्षण करे कि कौनसा शुद्ध है और कौनसा अशुद्ध, ऐसा शुद्ध सोना गरीब के झोपडे में भी मिल जाय तो लेने योग्य है। इसी तरह से आप भगवान के सिध्दान्त को भी लीजीये और कसौटी पर कसते जाईये, जहा शुद्ध हो, किसी तरह की मिलावट न हो उसको अपना लीजीये। उससे आपका प्रश्न हल हो जाएगा। और वह कसौटी है आगम।

एक आचाराग सूत्र को ही कसोटी बना लें, जो कि सम्पूर्ण श्वेताम्बर समाज को मान्य है। उसका अध्ययन करें।

प्रश्न ११७ : जिज्ञासु श्री मगनभाई कोठारी : निर्बल पर क्रोध चढता है सबल पर क्यों नहीं ?

उत्तर : क्रोध भी बराबरी का ध्यान रखकर किया जाता है, क्योंकि क्रोध करनेवाला जानता है कि बलवान पर क्रोध करूगा तो वह डबल करेगा और उससे छुटकारा पाना मुश्कील हो जायेगा क्योंकी मेरे अन्दर इतनी ताकत नहीं है। कमजोर पर क्रोध करके मैं उसको दबा सकता हू। वैसे कई बार सबल पर भी क्रोध आता है, किन्तु व्यक्ति उसे दबा जाता है, अभिव्यक्त नहीं होने देता. क्योंकि वह जनता है कि यहा क्रोध वसुत अहितकर होगा।

प्रश्न ११८ जिज्ञासु श्री नवरत्नमल हीरावत : मिथ्यात्व कर्म की निर्जरा होती है या उसे भोगना पडेगा ?

उत्तर : मिथ्यात्व एक प्रकार का कर्म है। वह कर्म यदि मजबूती से बंधा है तो भोगना पडेगा। यदि कच्चा बन्धन है तो शुध्द भावना, सद् पुरुषार्थ से और सामायिक से निर्जरा करके उसे तोड सकते हैं।

प्रश्न ११९. : जिज्ञासु श्री भाईलाल : कोई व्यक्ति धर्म स्थान के निर्माण में अर्थ सहयोग करे तो उसको पुण्य के अतिरिक्त संवर और निर्जरा के अनुमोदन का लाभ मिलता है क्या और पुण्य कौनसा बंधता है ?

उत्तर : भाईलाल भाई का प्रश्न आप सभी समझ गये होंगे। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि पाप कर्म करके पैसा कमाया जाता है, उस पैसे को पाप में भी लगाया जा सकता है और पुण्य कार्य में भी लगाया जा सकता है। पाप में लगाया जाता है–उसकी तो पाप की गति है ही। लेकिन कहीं धर्म स्थान बनाया अच्छा कार्य किया, अच्छे कार्य का अनुमोदन होता है उसका फल मिलता है या नहीं ? यह तो अवश्य है कि पाप की बहुलता से संपत्ति कमाई जाती है। उसका उपयोग आपने

विवाह, शादी, रोशनी, आडंबर आदि कार्यों में किया तो इतना पाप बांध लिया कि उससे हल्का होना कठिन हो जाता है। लेकिन जिसमें विवेक जग जा और धर्म स्थान बनाने के लिये खर्च करता है, साधर्मी भाइयों की हमदर्दी के लिये खर्च करता है तो उसको जो मकान बनाने में आरभ में हिंसा लगती है उसका तो पाप लगा, किन्तु शुभ भावना से पुण्यवानी बन्धती है और आत्म शुद्धि से हल्का होता चला जाता है। शुभ पुण्यानुबन्ध पुण्य बन्धते हैं तो अगले जन्म में महान बनता है। शुभ भावना मे त्याग किया है और त्याग से आत्म शुद्धि होती है। अतः निर्जरा एव शुभ-भावों से संवर के अनुमोदन का लाभ भी मिलता है।

प्रश्न १२० जिज्ञासु श्री हीरालालसावर्दा: अनुपूर्वी का निर्माण किसने किया और कब किया? अनुपूर्वी में जिस तरह से अंक लिखे गये हैं उसकी रचना का कोई शास्त्र आधार है?

उत्तर . अनपूर्वी मन की साधना का एक माध्यम है। मन को एकाग्र करने के लिये नवकार मत्र के पदों को अको में परिवर्तित कर दिया हैं। नमो अरिहंताण पर। एक नबर लगा दिया। नमो सिद्धाणं पर दो नम्बर लगा दिया। इसी प्रकार सब पदों पर नम्बर लगा दिये। इसके अनुसार चलने पर मन एकाग्र रहता है। साधारण व्यक्तियों के मन को साधने के लिये यह अच्छा उपाय है। अनुयोग द्वार सूत्र में गणितानुयोग के वर्णन में आनुपूर्वी अदि का उल्लेख मिलता है अत. यह शास्त्रों की बताई विधि के अनुकूल है।

प्रश्न १२१ : जिज्ञासु श्री भीखमचन्द भंडारी: चन्द्र भूप की कथा में रानी वीरमती ने अपने मंत्रों के द्वारा चन्द्र राजा को कूकडा कैसे बना दिया?

उत्तर: कथा भाग अलग है और शास्त्रीय दृष्टिकोण अलग है। कथा भाग में कई बातें आती हैं वे सब आत्म शुद्धि के लिये नहीं होतीं। इस कथा भाग में राणी वीरमती और राजा चन्द्र का उल्लेख आया है वह इहलोक से सम्बन्ध रखता है। यह पौराणिक आख्यानों की तरह का

एक आख्यान है। इसका कोई आगमिक आधार उपलब्ध नहीं होता। कई बार कथाओं में अति रञ्जित चित्रण भी आता है।

दिनाक ३०-९-१९८४

प्रश्न १२२ : जिज्ञासु सुशीला सेठिया आज की युवा पीढी के मानस पटल पर सामायिक का महत्व बिठाने को कृपा करें?

उत्तर : सामायिक साधना किसी व्यक्ति, जाति या पार्टी की होती नहीं है। यह मानव मात्र की है। बच्चे से लेकर तरूण, प्रौढ, वृद्ध सबके लिये है। शर्त यह है कि प्रत्येक व्यक्ति इसको समझने का प्रयास करे और खुले दिल से समझे कि वर्तमान जीवन में इससे क्या लाभ है। व्यापारी, व्यापार की दृष्टि से चिन्तन करता है कि इस व्यापार से क्या लाभ है? वैसे ही चिन्तन करें। यदि सही माने में तरूण है तो वह इस लाभ से कभी वंचित नहीं रहेगा। सामायिक ऐसा लाभ है कि मैं इसकी उपमा कल्प वृक्ष से दे चुका हूं। सभी मनोकामना की पूर्ति यह करनेवाली है। लेकिन इसकी विधि समझें। यदि इस बात का खयाल कर लें तो कोई युवक युवती इससे वंचित रहना नहीं चाहेगा। आज के युग को तनाव का युग कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में युवक यह समझ लें कि सामायिक साधना तनाव मुक्ति का एक बेजोड़ साधन है। इसके द्वारा आत्म शान्ति तो मिलती ही है, सभी प्रकार के तनावों से भी मुक्ति का प्रयास सामायिक साधना में किया जा सकता है। आज का युवा सामायिक की मनोवैज्ञानिकता को नहीं समझने के कारण ही इससे डरता है।

प्रश्न १२३. : जिज्ञासु वैराग्यवती मधु दुगड़ किसी बीमार को खून की बोतल चढ़ाई जाय तो उसको मांस खाने का दोष लगता है या नहीं?

उत्तर : यह तर्क का युग है। आज का विद्यार्थी वर्ग प्रायः तर्क प्रधान हो गया है। पहले का युग श्रद्धा प्रधान था। बाहरी अनुसंधान से समाज के अन्दर छोटे व्यक्ति के मन में तर्क खड़ा होता है।

मधु वैराग्य भावना लेकर चल रही है। बहिन को ध्यान हो तो इस बारे में एक रोज विस्तार से बता चुका हूं। जो अन्न हम खाते हैं उससे रस बनता है। रस से रक्त बनता है। रक्त के बाद मांस, मज्जा आदि बनते हैं। अतः रक्त मांस नहीं कहला सकता। रस के रूपान्तरण का रूप रक्त है। जैसे ग्लुकोज के इन्जेक्शन से सीधा खून बनता है। किसी दीन दुखी अनाथ को रक्त दिया तो उसको मांस नहीं दिया, जीवन दान दिया।

प्रश्न १२४ : जिज्ञासु श्री पन्नालालचोरड़िया : तप का क्या महत्व है ?

उत्तर : तप का बहुत महत्व है। तप का महत्व पहले भी मैंने बताया था और कल भी बताया था। शायद चोरड़ियाजी उस समय उपस्थित नहीं होंगे ? तप जीवन को-आत्मा को शुद्ध बनानेवाला तत्व है। यह साधना की एक विद्या है। यह हमारी मानसिक भूमिका को उज्जवल बनानेवाला तत्व है। तप को यथा स्थान जीवन में उतारेंगे तो यह सब रोगों की दवा भी है। शारीरिक मानसिक, धार्मिक सब का यह मूल मंत्र है। तप बारह प्रकार का बताया गया है। तप के वास्तविक स्वरूप को समझ कर विधि से करना सीखें तो यह सब रोगों की औषधि सिद्ध हो सकता है।

प्रश्न १२५. : जिज्ञासु शान्तिदेवी चोपड़ा : क्या पहले की बातें याद आने पर आर्त ध्यान आता है ?

उत्तर : आर्त ध्यान पैदा करनेवाली बातें स्मृति में आयेंगी तो आर्त ध्यान आना स्वाभाविक है। पूर्व की स्मृति दुख की अवस्था की है तो आर्त ध्यान होगा। यदि वह सुख की अवस्था की है तो प्रमोद होगा। लेकिन यह स्मरण उसको आता है जिसका मस्तिष्क अन्य कार्यों में व्यस्त नहीं है। खाली मस्तिष्क पर नियंत्रण रखें, निश्चित कार्यक्रम रखें जिसका संकेत में पहले दे चुका हूं। सामायिक में एक कार्यक्रम यह

हो कि पूर्व की स्मृतियों का संशोधन करें, वे बार बार उभरे नहीं इसका स्वरूप समझ लेंगे और उस विधि से चलेंगे तो आर्त ध्यान नहीं आयेगा।

प्रश्न १२६. : जिज्ञासु श्री इन्द्रचन्दजी . धर्म और कर्तव्य पथ पर चलते हुए भी सफलता से कभी कभी वंचित रहना पडता है। ऐसे संदर्भ में उन्नति के पथ पर चलने के लिये क्या करें ?

उत्तर : धर्म को अगर सही माने में समझ लिया गया है, सही तरीका अपना लिया गया है तो इससे उन्नति का अवलम्बन–सहारा मिल जायेगा। लेकिन सही तरीके से विधि समझे बिना पूरी सफलता नहीं मिलेगी। आप सोचते हैं कि पूरी सफलता क्यों नहीं मिली, साधना की विधि का स्वरूप समझा नहीं, जीवन में उतारा नहीं, फिर सफलता कैसे मिलेगी ? धर्म साधना में कर्तव्य पराणता को लेकर चलना चाहिये। बाधाओं से विचलित नहीं होना चाहिये। सफलता स्वतः आयेगी।

प्रश्न १२७ : जिज्ञासु कुमारी कुंकुम जैन : किस भाव व अन्य कार्यों विचारों से आप चौमासा फरमाते हैं ? कृपया हमें बतायें ?

उत्तर : जहाँ की जनता जीवन उत्थान के लिये लालायित है साथ ही उस क्षेत्र की परिस्थिति सयम के अनुकूल हो। सयम के अनुकूल का तात्पर्य है संत जीवन, जो विश्व का एक महान जीवन है, यह महान जीवन वीतराग द्वारा बतलाई प्रतिज्ञाओं पर निर्भर है। उस की प्रतिज्ञाओं का पालन सबसे पहले हो अन्य सब बातें गौण है। संयम की मर्यादा की सुरक्षा की व्यवस्था जिस क्षेत्र में नहीं है वहा पर चातुर्मास नहीं किया जाता। संघ की भावना तीव्र है, साथ ही साधु जीवन की मर्यादा सुरक्षित रहती है संत जीवन को द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की अनुकूलता लगे वहा पर चतुर्मास किया जा सकता है।

प्रश्न १२८ : जिज्ञासु श्री चांदमलजी : क्या नवकारसी करनेवाले प्रत्याख्यान पूरा नहीं होने से पहले नहाते है तो नवकारसी के प्रत्याख्याने टूट जाते हैं ?

उत्तर : शास्त्रीय दृष्टि मे नवकारसी का महत्व है। जब तक नवकारसी नहीं पाली जाय तब तक असणं पाण यानि आहार, पानी आदि नहीं ग्रहण कर सकते। उसी तरह से नहा भी नहीं सकते। नहाने से पानी की बूद मुह में जा सकती है। इसलिये नवकारसी पालने से पहले स्नान नहीं करना चाहिये।

प्रश्न १२९.: जिज्ञासु श्री मनोहरलाल जैन: जब आरा बदलता है तब देव मनुष्यों को गुफाओं में छिपाते हैं। वे नदी किनारे से मछलियां मांस आदि भुन भुन कर खाते हैं तो फिर सब उसके बाद मनुष्य लोक में कैसे आ गये. ?

उत्तर : आरा परिवर्तन के समय कुछ परिस्थिति ही इस प्रकार की होती है कि वहा मच्छ कच्छ ग्रहण करने के अलावा और कोई चारा नहीं है। अन्न वगैरा कोई चीज नहीं मिल सकती। जीवन निर्वाह के लिये उन्हें अखाद्य चीजें लेनी पड़ती हैं। विकट परिस्थिति में ऐसी चीजें लेनी पड़ती है। पहले किया हुआ पाप भोगते है। लेकिन कुछ को पश्चाताप से कुछ पुण्य बंध होता है। जब आरों का परिवर्तन होता है उस समय वनस्पति आदि की उत्पत्ति होने पर वे गुफा से बाहर आते है। लेकिन उस वक्त धर्म नहीं कर सकते। आगे चल कर बुद्धि में रूपान्तरण आता है। जीवन क्रम बदलता है। जब सात्विक आहार मिलने लगता है तब धर्म करणी का संयोग प्राप्त होता है फिर धर्म कर सकते हैं। वेही मनुष्य इस क्षेत्र में बीज रुप में बचते हैं, जिनसे आगे संसार बढ़ता है।

प्रश्न १३०. जिज्ञासु श्री सायरचंद कवाड़: इलेक्ट्रोनिक घडी में दोष लगता है तो साधु महाराज प्रवचन में और अपने कमरे में पंखा और लाइट रखते हैं उनको दोष लगता है या नहीं?

उत्तर: आपका प्रश्न मौलिक है। आप जानते हैं कि साधु छोटी बच्ची को भी छूते हैं तो दोष लगता है तो बड़ी बहिन को छूने से भी

दोष लगता ही है। इसी प्रकार इलेक्ट्रोनिक्स घड़ी से दोष लगता है, तो पंखा और लाइट लगाने पर दोष अवश्यंभावी है। आपको याद होगा कि भगवान महावीर के समवसरण यानि व्याख्यान स्थल पर अनेक राजा महाराजा और मगध सम्राट श्रेणिक जाते थे तब वे अपनी फूल मालाए उतार कर बाहर रखते थे, सचित्त इलायची के डोडे जेब में होते तो जेब से निकाल कर बाहर रखते थे। इतना विवेक रखते थे, क्योंकि वे जानते थे कि भगवान महावीर परिपूर्ण अहिंसक है, हिंसा का प्रसंग उनके व्याख्यान स्थल पर नहीं होना चाहिये। खुले मुह नहीं बोलना चाहिये। इसलिये सन्त मुहपत्ति रखते है ताकि वायु काय के छोटे जीवों की भी हिंसा न हो। बिजली और पंखे से त्रस काय के जीव भी मर जाते हैं, अग्नि के जीव तो मरते ही हैं। पंखे की चोट अनजान में मनुष्य को भी लग जाय तो वह भी खत्म हो सकता है। माइक में बोलने के बजाय व्याख्यान नहीं दे तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन साधु जीवन में बिजली पंखों और माइक से दोष लगाना कत्तई उचित नहीं है। भगवान ने ऐसी आज्ञा नहीं दी कि साधु जीवन में दोष लगाकर उनकी वाणी का प्रचार प्रसार किया जाय। अगर उन्होंने ऐसी आज्ञा दी होती तो, उनके शासन में उनके जीवन काल में भी अनेक लब्धिधारी मुनिराज थे, जो अनेक रूप बनाकर भिन्न भिन्न स्थानों पर एक साथ प्रचार-प्रसार कर सकते थे और लाखों व्यक्तियों को जैन धर्म का अनुयायी बना सकते थे लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया, क्योंकि लब्धियों का प्रयोग करके प्रचार करना उचित नहीं माना जा सकता है। धर्म स्थान पर छोटे छोटे जीवों की भी हिंसा नहीं होनी चाहिये।

जहा पर सत सती वर्ग रहते हैं उस पर बिजली और पंखे का उपयोग नहीं होना चाहिये। व्याख्यान के लिये मोईक का उपयोग नहीं करना चाहिये। किसी ने बिजली जला दी, पखा चला और सत सती ने एतराज नहीं किया और वहा पर बैठे हैं तो यह एक तरह से उनका अनुमोदन है। आप यहा पर पंखा रख देते हैं, मैं यहा पर बैठा रहता हूं और यह कह देता हू कि मैने तो यहा रखने का नहीं कहा श्रावकों ने

रख दिया। तो यह बहानेबाजी होगी। मेरी अनुमति के बिना कोई पंखा रख सकता है क्या? बिजली जला सकता है क्या? मैं जिस स्थान पर रहता हूं वहा के लिये पंखा लगाने व चलाने का मकान मालिक कहे तो, मै कहूंगा कि आप अपना मकान संभालिये, आप पंखा लगाते हैं, तो मैं यहा नहीं रह सकता। कोई श्रावक जबरदस्ती नहीं करता, हम मान जाते हैं, तभी यह कार्य होता है।

प्रश्न १३१. : जिज्ञासु सुरेश पामेचा : तपस्या सामायिक आदि से कर्म कटते हैं या आगे की पुण्यवानी बंधती है? इस विषय में खुलासा कीजिये, जब कि बधे हुए कर्म भोगने पडते हैं?

उत्तर : सामायिक साधना और तप साधना से आत्म शुद्धि होती है पूर्व जन्म के कर्म काटने के साथ साथ उस के प्रति जो प्रशस्त राग है उससे पुण्यवानी भी बंधती है। यह एक ऐसी पवित्र साधना है कि एक साधे सब सधे। इसलिये सामायिक साधना और तप साधना जिस विधि से करनी चाहिये उस विधि से करते हैं तो आत्म शुद्धि होती है, कर्मों के वृंद उड़ते हैं। वर्तमान जीवन में जो रुकावट आती है, बाधाएं आती हैं, वे पूर्व जन्म के कर्मों के कारण है। कर्म हट जाते हैं तो आत्म शुध्दि अधिक होगी, पुण्यवानो ज्यादा बंध सकती है। इस लोक और परलोक को सुखी बना सकते हैं। निकाचित कर्मों के बंधन नहीं टूटते अन्य सामान्य कर्मों को समय से पूर्व भी काटा जा सकता है। अतः यह नियम नहीं है कि बान्धे हुए कर्मों को उसी रुप में भोगना आवश्यक है।

प्रश्न १३२ : जिज्ञासु श्री पुष्पा : सुबह की टाईम में सन्त सतियों को आज्ञा देते हैं तो सामायिक को छोडकर आज्ञा देते हैं, किसमें ज्यादा लाभ होता है!

उत्तर : छोटी वय की बहिनों के मस्तिष्क में भी जागृति आ रही है। यह एक लघुवयी बालिका का प्रश्न है।

संतो को कोई वस्तु बिना दी नहीं लेनी चाहिये। एक तिनका भी उठाना हैं तो मालिक की आज्ञा के बिना नहीं उठा सकते। एक पत्थर के

टुकड़े की भी आवश्यकता है तो उसकी आज्ञा देनेवाला हीन मिला तो किसको खोजना चाहिये ? जो भाई बहिन सामायिक में नहीं हैं, खुले हैं तो उनसे आज्ञा लेनी चाहिये। जो भाई-बहिन सामायिक में नहीं है, खुले हैं तो उनसे आज्ञा लेनी चाहिये। आज्ञा देने से काफी लाभ मिलता है। पदार्थ की आज्ञा देना दान है। एक ही वस्तु की आज्ञा देने मे सभी चाहते हैं कि हमारा भी सीर हो तो सब मिल कर आज्ञा दे सकते हैं। सामायिक का समय पूरा हुए बिना सामायिक पालकर आज्ञा नहीं देनी चाहिये। दान का बहुत फल बताया इससे उत्कृष्ट रसायन पैदा करके तीर्थंकर गोत्र भी बांधा जा सकता है। किन्तु सामायिक में दोष लगाकर आज्ञा देना योग्य नहीं।

दिनांक ७-१०-८४

प्रश्न १३३.: जिज्ञासु पुष्पा सेठिया : आयुष्य कर्म का बंध कैसे होता है? इसको कैसे ज्ञात किया जाता है?

उत्तर : प्रश्न सैद्धान्तिक एवं मौलिक है। आयुष्य बन्ध के सम्बन्ध में शास्त्रीय नियम है कि जिन्दगी का दो तिहाई (२/३) हिस्सा समाप्त होने पर अगले जन्म का आयुष्य बन्ध होता है। यदि किसी की उम्र ६० वर्ष है तो ४० वें वर्ष में प्रवेश करते करते अगले जन्म के आयुष्य बंध का प्रसग आता हैं। आयुष्य बंध के समय भाव अच्छे हैं तो अच्छा आयुष्य बंध होता होता है। यदि अधिक क्रोध कर रहे हैं तो सर्प आदि योनि का बंध हो सकता है। ४१ वे वर्ष में नहीं हुआ तो आगे जितने वर्ष हैं उसके तीन भाग करलें। ऐसा करते करते अन्तिम अन्त मुहूर्त में भी हो सकता है। मनुष्य को मालूम नहीं पड़ता कि कब आयुष्य बन्ध हो जाय। इसलिये हर क्षण सद भाव, अच्छे परिणाम रखने चाहिये। अच्छे भाव रहेंगे तो अच्छा आयुष्य बन्द होगा।

प्रश्न १३४. : जिज्ञासु अनूप सेठिया : श्रावक को कैसा व्यापार करना चाहिये जिसमें कर्मों का बन्धन सब से कम हो?

उत्तर : श्रावक के लिये महा पाप के कार्यों के त्याग का विधान है। श्रावक का जीवन अल्प आरम्भ का होना चाहिये। कौनसे कार्य में, कौनसे व्यापार में अल्पारम्भ है इसका लेखा जोखा श्रावक स्वयं करलें। १५ कर्मादानमहापाप हैं, उनको छोड़ना चाहिये। अति तृष्णा को सीमित करके जिसमें कम से कम पाप लगता हो ऐसा व्यवसाय या व्यापार श्रावक के लिये खुला है।

प्रश्न १३५. : जिज्ञासु वैराग्यवती मधु : चार दिशाओं मे से दो दिशाएं शुभ मानी गई हैं, दो अशुभ। धर्मानुष्ठान के लिये पूर्व व उत्तर दिशा की ओर मुंह करने की जो विधि दर्शायी गई तथा शेष दो पश्चिम व दक्षिण दिशा का निषेध किया गया। इस विधि निषेध में शास्त्रीय आधार क्या रहा हुआ है? कृपया स्पष्ट फरमाइये।

उत्तर : दो दिशाएं शुभ मानी गई है इसका कारण यह है कि महाविदेह क्षेत्र पूर्व और उत्तर की तरफ पड जाता है-इसलिये उन्हें शुभ माना है। आचाराग सूत्र में यह भी बताया है कि महाविदेह क्षेत्र में तो तीर्थंकर विद्यमान हैं ही इसलिये उनकी तरफ मुंह करके धर्म साधना करनी चाहिये। अन्य दिशाओं में जहा संत महात्मा विराजमान हो उनकी तरफ मुंह करके धर्म आराधना करना शुभ बताया है। उनकी तरफ पीठ करके बैठते हैं तो यह अशुभ है। क्योंकि आचाराग सूत्र में प्रज्ञापक दिशा का भी निर्देश उपलब्ध होता है।

प्रश्न १३६. : जिज्ञासु श्री राजीव सेठिया : श्रावक प्रतिक्रमण में अणुव्रतों को ही स्थूल व्रतों के रूप में ध्यान में, वाद में उच्चारण करके और फिर अनुव्रतोंके रूप में बोलते हैं। इस प्रकार तीन वार क्यों बोला जाता है?

उत्तर : राजीव, यह सेठिया परिवार का बालक है। इसे मालूम होगा कि परीक्षा देने से पहले विषयको अनेक बार रिविजन करके मस्तिष्क में जमा लेते हैं। इसी तरह से जो व्रत अगीकार किये है उनमें क्या क्या दोष लगे हैं उनका ध्यान में चिन्तन किया जाता है, फिर प्रकट में उन दोषों का आलोचन एव प्रायश्चित किया जाता है तथा तीसरी वार पुनः प्रतिज्ञा की स्थिरता के लिये उच्चारण किया जाता है।

प्रश्न १३७. : जिज्ञासु प्रतापसिह दुधेरिया : सूर्यास्त के पश्चात् वहनों को साधुजी महाराज के दर्शन के लिये स्थानक मे क्यों नहीं जाना चाहिये ?

उत्तर : प्रश्न महत्वपूर्ण है, जानने योग्य है। भाई जानना चाहते हैं कि सूर्यास्त के पश्चात् बहिनें साधुजी ठहरे हैं उस स्थानक में क्यों नहीं जा सकतीं। आपको ख्याल रखना है कि भगवान महावीर ने जो साधना मार्ग बताया उसमें सबसे कठिन मार्ग ब्रह्मचर्य का बताया। यह सबसे उत्तम तप भी है प्रभु ने स्पष्ट कहा है। 'तवेसु वा उत्तम ब्रह्मचेरं॥ दूसरी तपस्या कम हो लेकिन ब्रह्मचर्य तप की आराधना करता है तो वह उत्तम व्रत रखनेवाला है। पाच महाव्रतों में अपेक्षा से इसको श्रेष्ठ बताया है। इस दृष्टि कोण से जो वस्तु महत्वपूर्ण होती है उसकी रक्षा इन्तजाम भी उतनाही सगीन किया जाता है। आपको मालूम होगा कि तिजोरी में रत्न भरे हैं तो उसकी सुरक्षा के लिये पहरा लगाते हैं। ब्रह्मचर्य उत्तम गुण है। सूर्योदय के बाद में बहिनें संतो के पास में जा सकती हैं लेकिन उसके लिये भी समय निश्चित किया गया है। प्रार्थना के समय पहुंच कर प्रार्थना श्रवण करनी चाहिये। ताकि सर्व प्रथम पवित्र सस्कारों का मंगलाचरण हो सके। उसके पश्चात प्रवचन के पूर्व पहुंचना सतो कि साधना में व्यवधान कारक होता है, क्योंकि उस में सत लोग अपना नियमित काम करने में लगे हुए रहते हैं। उस समय वे यदि आप से नही बोलते है तो आप कहेंगे कि वे

बोलते नहीं हैं। यदि वे अपना कार्य छोड़कर बोलते हैं तो उनकी मर्यादा में स्खलना हो सकती है। इसलिये अलग अलग बात करना गलत होगा। प्रार्थना सामूहिक रूप से होती हैं दर्शन करने हों तो वहा कर लें। फिर बहिने व्याख्या में उपस्थित हो। उसके बाद मध्यान्ह में डेढ बजे से लाभ लेना हो तो संध्या प्रतिलेखन के पूर्व तक बैठ सकती हैं। वहा पर भी अलग अलग संतोंका समय खराब नहीं करें। शांति से बैठेंगी तो कुछ उपलब्धि होगी। दिन के समय भी समझदार पुरुष की साक्षी जरूरी है। बहिनें एक हो या हजार हो और कोई भाई पास में न हो तो संतों को मंगल पाठ सुना देना चाहिये। बहिनों को नहीं बैठने का विवेक रखना आवश्यक है। इस प्रकार का विवेक रखने पर ही ब्रह्मचर्य का पालन सुदृढ रूप से किया जा सकता हैं। प्रश्न हो सकता है कि, दिन में बहिनें भाइयों की साक्षी से आ सकती हैं तो रात्रि में क्यों नहीं आ सकती ? तो इसका सीधासा उत्तर है कि रात्रि के समय में आने का सर्वथा निषेध है, क्योंकि रात्रि का समय वासनाओं की सक्रियता का होता है। दिन के समय में मच्छर या माकण आपको काटते हैं क्या ? दिन के समय में ये प्राय: नहीं काटेंगे। सूर्यास्त के बाद एक प्रहर रात्रि के बाद का समय द्रव्य अन्धकार से परिपूर्ण है। वैसे ही भाव अंधकार से भी परिपूर्ण माना गया है। दिन में वायुमंडल शुद्ध रहता है। दिन में मनुष्य का जागृत मस्तिष्क किसी-न-किसी कार्य में लगा रहता है, दूषित विचार मन में प्राय नहीं आते। रात्रि में जब दूसरे काम से निवृत्त हो जाते हैं तो निमित्त पाकर वासनाओं की ओर मन जाता है। इसलिये सूर्यास्त के बाद भाई कितने ही बैठे हो लेकीन बहिनों को धर्म स्थान में प्रवेश नहीं करना चाहिये। ब्रह्मचर्य सुरक्षित रहे, अखंड रहे इसका प्रयत्न होना चाहिये। यदि किसी को कुछ ज्ञान सीखना है तो इसके लिये दिवस का काल पर्याप्त होता है। इसके अतिरिक्त रात्रि में साध्वी समुदाय से महिलाओं को रात्रि का समय उपलब्ध हो सकता है।

प्रश्न १३८. : जिज्ञासु श्रीकमल चच्छावत : संघ की परिस्थितियों से कभी आप श्री के मन में तनाव की स्थिति बनने लगे तो आप किस प्रकार दूर करते हैं ?

उत्तर : बच्छावतजी को कभी नाच, डान्स अथवा सिनेमा देखने का प्रसग आया होगा। अलग अलग पिक्चर आते हैं। कल्पना करिये कि किसी पिक्चर में बहुत अस्तव्यस्त और तनाव पैदा करने वाले सीन सामने आते हैं। उस समय आप यही तो सोचते हैं कि ये तो कृत्रिम हैं, वास्तविक नहीं। जब व्यक्ति यह समझ लेता है कि वस्तु स्थिति दूसरी है तो उसके मस्तिष्क में तनाव नहीं आता। वैसे ही समाज या राष्ट्र की अलग अलग तरह की नीतिया है, समस्याए हैं; जो व्यक्ति तटस्थ दृष्टि रखकर उनको हल करने का प्रयास करता है, उसके मस्तिष्क में तनाव नहीं आयेगा। लेकिन जो उसमें डूब जाता है उसके मनमें तनाव आये यह स्वाभाविक है। मेरे समक्ष भी बहुत कुछ जिम्मेदारिया हैं। किन्तु मैं उन्हें द्रष्टा भाव से ही लेता हूं। अतः तनाव उत्पन्न होने का प्रसग नहीं आता।

प्रश्न १३९. : जिज्ञासु श्री प्रतापसिंह कोठारी : (उदयपुर) हरी मिर्च का आचार या अन्य नीबूं की मिर्च, केरी आंवला का आचार क्या हरि के सौगन वाले के तीन चार दिन बाद काम मे आ सकता है ? अगर हां तो क्यों ?

उत्तर : आचार कई तरह से डाला जाता है। यदि उबालकर डाला गया है और उसका रग भले ही हरा हो किन्तु मूल रस चलित हो गया हो तो तीन दिन बाद में काम में ले सकते हैं। इसी तरह से केरी का आचार १०–१५ दिन बाद त्वचा गल जाने की स्थिति में है तो काम में ले सकते हैं–हरी नहीं लगेगी।

प्रश्न १४० जिज्ञासु श्रीमती शकुन्तला · क्या समुद्र विजय जी जैन धर्मावलम्बी नहीं थे ? यदि हा तो भगवान नेमिनाथ के बारात के स्वागतार्थ पशुओं को बाड़े में क्यों बन्द किया गया ?

उत्तर : यह एक सामान्य बात है कि विवाह जैसे प्रसंगों पर सभी प्रकार के लोग उपस्थित होते हैं। उन आगन्तुकों का सत्कार करने वाले सभी व्यक्ति मनोबली हों यह आवश्यक नहीं। ऐसी स्थिति में अरिष्ट

नेमि के बारातके प्रसंग पर पशुओं को बाड़े मे एकत्रित किया जाना। यह उनकी कमजोरी का द्योतक है। व्यक्ति के मानस मे कई प्रकार की कमजोरिया होती है वह देखता है कि मेरे अन्दर इतनी क्षमता नहीं है की कुरीति रिवाजों को रोक सकूं ऐसी स्थिति मे वह यह भी साहस नहीं कर पाता कि महमानों को अभक्ष्य खाना नहीं खिलाऊँ। इतनी भावना उभर जाती तो वे विचार कर लेते कि मुझे अभक्ष्य खाना नहीं खिलाना है। लेकिन समुद्र विजय जी में ऐसी भावना उभरी नहीं थी उसका कारण यह है कि तीर्थंकर अरिष्ट नेमि उस समय तक दीक्षित नहीं हुए थे। उनके दीक्षित होने के पश्चात् सभी लोगों की भावना का स्वरूप निखरा। अरिष्ट नेमि शादी करने गये उस समय यादव कुल में हिंसा आदि कुरीति रिवाज चल रहे थे, उन्हें समाप्त करने की भावना उनमें जगी, इसलिये वे तोरण से वापिस फिर गये, बारात को छोडकर आ गये। आज भी जैन धर्म चलता है लेकिन जैनत्व को माननेवाले इतने कमजोर हो गये हैं कि अनीति का प्रतिकार करने के लिये खड़े नहीं हो सकते। आज इस साहस की आवश्यकता है कि इस प्रकार के हिंसक कार्यों का पुर-जोर विरोध किया जाय।

प्रश्न १४१ : जिज्ञासु श्रीमती निर्मला: मरलेचा पच्चखान रहित तप करने से क्या लाभ या हानि है?

उत्तर: आप पोस्ट आफिस से लिफाफा लाते है। उसके कितने पैसे लगते है! ५५ पैसे खर्च करके लिफाफा लाये, पत्र उसमे डाला और लिफाफा बंद करके लैटर बोक्स में डाल दिया। पोस्ट ओफीस में उस पर मुहर लगती है। तब वह लिफाफा आगे रवाना किया जाता है। सील मुद्रांकित टिकिट लगाये बिना लिफाफा आगे नहीं पहुंचता।

इसी तरह से तप पर प्रत्याख्यान की छाप लगे बिना तप का जितना लाभ मलना चाहिये उतना लाभ नहीं मिलता।

प्रश्न: १४२. जिज्ञासु श्री राकेश सेठिया: (कलकत्ता) आजकल बिना लाइट के भी कैमरे आते हैं जिनसे कोई

जीव हींसा नही होती, उससे आपके फोट्रू क्यों नहीं खींचे जा सकते ?

उत्तर. आपको देखना चाहिये कि फोटो किस लिये लेते हैं ? जिनको अच्छा समझते हैं उनकी फोटो लेते हैं अखबारों मे फोटू छपते हैं और वे अखबार रद्दी में बिकते हैं, जूतों की दुकानवाले भी उनको खरीदते हैं तो उनमें जूते लपेट कर ग्राहकों को देते हैं। तो जिनकी फोटो उसमें छपी है उसका कितना अपमान होता है। पैरों में रोंदने जूते लपेटने की अपेक्षा तो फोटो नहीं लेना अच्छा है, इसके अतिरिक्त फोटो भले ही बिना विद्युत के कैमरे से लिये जाते हैं, किन्तु उनकी धुलाई में हिंसा होती है। साथ ही यह कार्य निर्ग्रन्थ संस्कति के प्रतिकूल है।

प्रश्न १४३. जिज्ञासु श्रीरितेष सेठिया. आपके बचपन में किस तरह के विचार मन में आये थे, जिसके कारण आज आप इतने महान बन गये ?

उत्तर : प्रश्न अच्छा है। मैं बचपन में यह विचार करता था कि अधिक से अधिक जमीन लेनी, मकान बनाना, व्यापार करना, अन्य किसी को देना नहीं। यह बचपन की कल्पना थी, किन्तु जब से मैंने जीवन एवं धर्म का महत्व समझा मेरे पूरे चिन्तन में अन्तर आ गया। मै निरन्तर महान बनने की कल्पना किया करता। मेरे बचपन के विचार सदा परमात्मा बनने के अथवा परमात्मा की ज्योति में समा जाने के होते थे।

प्रश्न १४४ जिज्ञासु श्री विजयकुमार : जैन धर्म के अनुसार पाच तत्व हैं और उसी से दुनिया बनी है। रोम के पौरिणिक धर्म में सिर्फ एक तत्व पानी माना गया है जब कि वैज्ञानिकों ने अब तक करीब ११० तत्वों से ज्यादा की खोज कर ली है। कृपया विस्तार से बतावें ?

उत्तर विस्तार के लिये तो गहराई में जाना पड़ेगा, जब कि समय थोड़ा है सबसे पहले यूनान में इस विषय की खोज हुई–पानी को तत्व माना गया। उसके बाद इससे पूरा समाधान नहीं मिल रहा था। अन्य

तत्वों को विज्ञान मानने लग गया। जैन दर्शन वैज्ञानिक पद्धति का दर्शन है। तीर्थंकरों ने केवलज्ञान प्राप्त करके जो विज्ञान बताया वह कभी इधर उधर नहीं हो सकता। तीर्थंकरों ने जड़ और चेतन दो मूल तत्व बताये। इसी के विस्तार के रूप में षड् द्रव्यात्मक लोक माना गया। दृश्य जगत में जड़ चेतन का मिश्रण होकर पर्याय से ९ तत्व बने। इससे अधिक कहीं भी नहीं बन सकते। आज के वैज्ञानिकों के सभी तत्वों का समावेश २ या ९ तत्वों में हो जाता है। मूल दो हैं जड़ और चेतन और पर्याय की दृष्टि से ९ हैं। इनके अतिरिक्त कोई तत्व नहीं है।

प्रश्न १४५ जिज्ञासु श्री मोतीलाल भानू: उपवास करते हैं उस दिन के पहले दिन सूर्यास्त के बाद रात को १२ बजे तक लोग भोजन करते है। उस स्थिति में दूसरे दिन जो उपवास करते हैं यह उपवास जैन धर्म की मान्यता के अनुसार क्या वास्तविक उपवास गिना जायेगा?

उत्तर. सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करना चाहिये - यह प्रत्येक जैनी का कर्तव्य होता है। चाहे उपवास करे या न करें, लेकीन सभी व्यक्ति सभी नियमों का पालन करें ऐसा नहीं बन पाता है। वैसे ही सभी जैनी नाम धरानेवाले लोग रात्रि में भोजन का त्याग करें ऐसा नहीं होता तो क्या उन सबको जैनत्व से निकाल दिया जाय? एक बच्चे को भी नहीं निकाल सकते। वैसे ही यह निर्देश दिया गया है कि सूर्यास्त होते ही त्याग नहीं बन सके और कल उपवास करना है तो रात्रि में १२ बजे बाद कुछ नहीं लेंगे, तब उपवास होगा। यह कमजोर व्यक्तियों के लिये निर्देशन दिया। इसमें रहस्य रहा हुआ है। - तारीख रात्रि में १२ बजे बदल जाती है। १२ बजे बाद कुछ भी नहीं लेना चाहिये। १२ बजे का समय भी कमजोर लोगों के लिये है। सदा के लिये रात्रि भोजन का त्याग करलें तब तो अति उत्तम है।

प्रश्न १४६ जिज्ञासु श्रीराजेन्द्र बागभट्टजी सुराणा- अंधेरी पूर्व · जैन धर्म का मुख्य ग्रन्थ कौनसा है? जैसे हिन्दुओं का गीता, सिखों का गुरू ग्रन्थ साहब, मुसलमानों का कुरान क्रिश्चनों का बाइबल है।

उत्तर : पहले उमास्वाति का बनाया हुआ संस्कृत भाषा में तत्वार्थ सूत्र माना जाता रहा है। इसमे ७ तत्वों का विशेषण है। किन्तु इसमें दार्शनिक विवेचन नहीं वत् रहा। जैन धर्म के मूल स्वरूप को दार्शनिक एव धार्मिक दृष्टि कोण से एक ही ग्रन्थ में अभिव्यक्ति मिल सके ऐसे हिन्दी ग्रन्थ की कमी महसूस हुई। इसकी पूर्ति अभी कुछ आप लोगों के सामने आ गई है। 'जिण धम्मो' के रूप में। जैन तत्व दर्शन का समग्र ज्ञान करना है तो वह प्राय: 'जिण धम्मो' का अध्ययन करके किया सकता है।

प्रश्न १४७. : श्री विनोदकुमार भंडारी - नमो अरिहंताणं का जन्म किस (अवधि) में हुआ ? इस महामंत्र को सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्यों माना जाता है ?

उत्तर : इस महामंत्र का जन्म अनादिकाल से है। इस क्षेत्र में इस काल में भगवान रिषभदेव ने प्रगट किया। महाविदेह क्षेत्र में सदा सदा के लिये विद्मान है।

इसे सर्वाधिक महत्व प्रदान करने का कारण है - यह व्यक्ति परक नहीं हो कर गुण परक है। इसमें गुणात्मक दृष्टि से ससार के समस्त महापुरूषों को नमस्कार किया गया है।

दिनाक १४-१०-८४

प्रश्न १४८ जिज्ञासु श्री कमल खिवसरा : कहते हैं कि एक बार भी शुद्ध मन से नवकार मंत्र का जाप मनुष्य कर लेता है तो उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। मैंने भी कई बार शुद्ध मन से नवकार मंत्र का ध्यान किया है। क्या मेरे भी सब पाप नष्ट हो गये होंगे ? अगर नहीं तो क्यों ?

उत्तर : पहली बात तो यह है कि शुद्ध मन किसे कहते हैं, इसकी परिभाषा खयाल में आ जाये तो शुद्ध भाव से एक बार का स्मरण भी

कल्याणकारी है। वस्तुतः शुद्ध भाव से एक ही नमस्कार करलें तो सारे पाप नष्ट हो सकते हैं। शुद्ध भाव को समझने में बहुत समय लगेगा। भाव को समझने का प्रयास पहले करें। आवेग और आवेश कितना है? इसके बीच में भाव चक्र चल रहा है। यदि शुद्ध भाव से स्मरण करते हैं तो भाव की स्थिति समक्ष में आ जाती है। आप माला फिरा रहे हैं, घर में बैठकर—मन कहीं दुकान पर तो नहीं घूम रहा है और कहीं तो नहीं जा रहा है? मन में कौन कौन से आवेग आ रहे हैं। पिताजी ने कुछ कह दिया तो माला फेरते समय उनकी बात पर आवेश तो नहीं आ रहा है, आखे लाल तो नहीं हो रहीं हैं। ये सब बातें शुद्ध मन और एकाग्रता की जानकारी देती हैं। मन में कितना आवेग और आवेश चल रहा है इसका ज्ञान आप सहजता से नहीं कर सकते। यदि आप पता लगाना चाहें तो आप देखिये कि आवेश कितना है—इसका समीक्षण करिये। समता भाव की दृष्टि से देखने की कोशिश करिये। यह देखना माला फेरने से भी बढकर है। आप तरूण हैं, देख सकते हैं। नमस्कार मन्त्र के स्मरण की यह विधि अन्तरगता पूर्वक सध जाती है तो वह स्मरण क्षणभर में करोड़ों वर्षों के कर्मों को नष्ट कर देता है। इसी बहुलता की अपेक्षा से नमस्कार मन्त्र को सब पापों को नष्ट करने वाला बताया गया है।

प्रश्न १४९.: जिज्ञासु सरला-बच्छावत' सचित पानी एक बार छानने के बाद दुबारा कितने घंटों से छानना चाहिये अथवा सूर्योदय और सूर्यास्त के समय छानना चाहिये?

उत्तर : आपका प्रश्न व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाला है। पहले आप पानी छानने के कपड़े के विषय में कुछ समझ लें। सचित पाणी को आप किस गरने से छानते है। छानने का कपड़ा कैसा है? इसको रोजाना देखते हैं या नहीं? छानने का कपड़ा बनते तक लोन का गफ कपड़ा होना चाहिये। यह ध्यान रहे कि उसमें छेद नहीं हों। अच्छी तरह से देखकर अनुभव करें। इसे स्पष्ट करने

के लिये मै संतों का एक प्रसंग बता रहा हूँ—स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज साहब बड़ी सादड़ी में विराज रहे थे। दीर्घ तपस्वी ईश्वरमुनि जी साथ ही थे। उनके जिम्मे पानी का काम था। वे बारीक से बारीक जीवों का ध्यान रखते थे। पानी का गरणा अच्छा था, वे रोजाना उसको ध्यान से देखते थे। एक बार उनके मन में ध्यान आया कि पानी को एक बार छानने के बाद त्रस जीव नहीं आयेंगे। दुबारा छाना तो दुबारा जीव आ गये। ऐसा करते करते उन्होंने ६ बार उस पानी को छाना तो छठी वक्त भी जीव निकल रहे हैं। वे आचार्य श्री के पास गये और उनसे पूछा कि क्या करें। धोवणपानी में एकेन्द्रिय जीव तो राख या अन्य वस्तु के धूने से भर जाते हैं। वे इतने कोमल होते हैं कि किसी वस्तु के धूने से नष्ट हो जाते हैं, लेकिन चलते फिरते जीव पानी में रहते हैं।

छठी बार छानने के पश्चात् उन्होंने लोन के गरणे से एक बार उस पानी को छाना, तो दुबारा जीव नहीं निकले। इतना निरीक्षण-परीक्षण करते हैं तब पानी अच्छी तरह से छाना जाता है।

जो बहिन प्रश्न पूछ रही है वह स्वय रोजाना पानी छानती है या नौकर चाकरों के भरोसे रहती है। अधिकाश बहिनें नौकरों के भरोसे छोड़ देती हैं। क्यों कि स्वयं तो सेठानी हो जाती हैं। उनको वह भी ध्यान होना चाहिये कि कपडा छानने का कैसा हो।

मैं राजनादगाव में था तब धर्मस्थान के पिछले मार्गपर किसी गृहस्थी के मकान के बाहर नल लगा था, वहा नौकर पानी भर रहा था। एक बार मेरी दृष्टि पड़ गई मैंने देखा कि पानी भरने वाले ने बर्तन में पानी भरने के बाद गरना पानीके बर्तन पर ही निचोड़ दिया। सारे जीव वापिस पानी में पहुंच गये होंगे या कुछ मर गये होंगे। नौकरों के भरोसे छोड़ते हैं तो वे इतना विवेक नहीं रखते।

कच्चे पानी में एकेन्द्रिय से लेकर लघुकाय पंचेंद्रिय तक के जीव बहुत कम समय में पैदा हो जाते हैं। कुछ जीव अन्तर मुहूर्त में पैदा हो जाते हैं। उसमें लीलन फूलन भी होती है। जिसमें अनन्तकाय के

जीव होते हैं। इसलिये शास्त्रकारों ने कहा कि गृहस्थाश्रम मे रहनेवालों को भी कच्चा पानी नहीं पीना चाहिये। पक्का पानी एक वार वन गया फिर उसकी निश्चित अवधि तक कोई जीव पैदा नहीं होगा। चातुर्मास में तीन प्रहर, शीतकाल में ४ प्रहर और ग्रीष्म काल में ५ प्रहर तक पानी निर्जीव रहता है। श्रावक श्राविकाओं को अचित पानी पीने का अभ्यास रहे तो सतो को भी पानी के बारे मे कुछ अधिक कहने की जरूरत नहीं पड़े। यह भी एक तरह से रसना इन्द्रिय पर विजय पाने का प्रसग है। डाक्टर भी कहते हैं कि पक्का (गर्म) पानी पीयो। चूकि कच्चे पानी में पुन. पुनः उत्पन्न जीव होते रहते हैं। उसमे विवेक रखा जाय, यह आवश्यक है। कहा जीवों की सुरक्षा होनी चाहिये। यह सारा कार्यक्रम अपने विवेक पर निर्भर है। प्राय. आम प्रचलन है कि प्रातः छाने गए पानी को दूसरे दिन प्रातः पुनः छाना जाता है।

प्रश्न १५० : जिज्ञासु श्री प्रताप दुधेड़िया: क्या संत मुनिराज संतियो से गोचरी आदि का काम करवा सकते हैं?

उत्तर • यह सभी के जानने योग्य विषय है। सत और सती वर्ग इन दोनों ने आध्यात्मिक जीवन में उत्क्रान्ति लाने के लिये संयम अंगीकार किया। संत अपनी मर्यादा और सीमा मे रहें और सतीवर्ग अपनी मर्यादा और सीमा मे रहे। चौथे महाव्रत की सुरक्षा भगवान ने विशेष विधि विधान के साथ वताई है। इसके लिये यह आवश्क है कि सती वर्ग को सतो के स्थान पर निर्धारित समय पर ही जाना एव बैठना चाहिये, अन्य समय में नहीं। नियत अथवा निर्धारित समय का तात्पर्य यह है कि जिस समय व्याख्यान हो, मध्यान्ह के समय शास्त्र का वाचन हो, जब अन्य भाई बहिन बैठे हों उस समय आना चहिये। अधिक भाई बहिन बैठे हुए नहीं हों तो एक समझदार पुरुष और एक समझदार बहिन का तो वहा पर होना नितान्त आवश्यक है, चाहे साध्वी १०० वर्ष की हो चाहे वह पुरुष साधु की माता हो, फिर भी बहिन भाइयों की साक्षी में शास्त्र का वाचन होना चाहिये। इस दृष्टि कोण से भगवान के निर्देशानुसार साधु और सती वर्ग द्वारा इस सीमा

में रहकर ज्ञान ध्यान और वाचन का कार्य किया जा सकता है। लेकिन आहार पानी का लेनदेन, वस्त्र, प्रक्षालन का कार्य न तो साधवी करे और न साधु करवाये। साधवी संत के लिये आहार पानी या गोचरी सुखे समाधे लाकर नहीं दे। यह साधना का उत्सर्ग मार्ग प्रत्येक साधु साध्वी के लिये आवश्यक है।

कदाचित् कल्पना करिये कि किसी गाव में तीन साधवियां हैं, उसे कम तो नहीं रहनी चाहिये। साधु दो से कम नहीं रहे। इसके अतिरिक्त कल्प नहीं है। दोनों अलग अलग मकानो में रह रहे हैं। अपनी अपनी गोचरी और पानी लाते हैं। कल्पना करिये कि वेदनीय कर्मों का उदय हुआ और दोनों साधु ऐसे बीमार हो गये कि पडोस के घरों से धोवणपानी और औषधि भी नहीं ला सकते। ऐसी परिस्थिति में साधविया एक बहिन और एक भाई को साथ लेकर उन मतों के लिये आहार पानी और औषधि लाकर देवे। यदि २ कोस की सीमा में कोई साधु नहीं हो, जो आहार पानी लाकर दे सके, तो अपवाद स्वरूप साधविया ला सकती हैं, आहार पानी लाने के बाद जहां साधु बैठे हैं वहा पर्दा लगादे और पर्दे के नीचे से पातरे खिसका दें। आहार करने के बाद सत पात्रों को वापिस पर्दे के नीचे से बाहर खिसका दें और साधवियां उनको साफ करके उनके पास रख दें। किन्तु इस आपवादिक परिस्थिति में भी एक भाई एव एक बहिन की उपस्थिति अनिवार्य है। अपवाद की परिस्थिति को छोडकर स्वस्थ हालत में कोई साधु साध्वियों से आहार पानी मंगाता है और साध्विया लाकर देती हैं अथवा साधु साध्वियों को ले जाकर देता है, तो यह भगवन की आज्ञा का उलघन है। इस प्रकार की परिस्थिति यदि आचार्य को मालूम हो जाय तो उनको भारी दंड देना चाहिये। क्योंकि यह आहारादि का लेन-देन अकल्पनीय एव मोह वृद्धि का कारण है। मोह की वृत्तिया चारित्र को कमजोर बनाती हैं। एक बार चेतावनी देने के बाद दुबारा और तिबारा हो तब तक

भी प्रायश्चित देना चाहिये इसके उपरान्त उनको गच्छ से बाहर कर देना चाहिये।

प्रश्न १५१. : जिज्ञासु श्री वीरेन्द्र कोठारी : दिनांक १२-१०-८४ के व्याख्यान में आपने फरमाया के शिकारी ने बाण द्वारा जीव की हत्या की, उसमें उस शिकारी का दोष है ही साथ ही उस लोह की धातु का, जो बाण के मुंह पर है, उसके संयोग में जो पूर्व मे-पहाड में जीव थे, उनको भी दोष आता है, जहां कितने ही भवों पूर्व संयोग रहा होगा। दूसरी तरफ हम लोग चातुर्मास में संत महापुरूषों के दर्शनार्थ जाते हैं जहा प्रत्यक्ष रूप में हिंसा होना स्वाभाविक होते हुए भी दोष या पाप कम लगता है, ऐसा क्यों? इस शंका का निवारण करें।

उत्तर : आप शायद प्रतिदिन प्रवचन नहीं सुनते है? मैने प्रवचन में इसका कई बार स्पस्टीकरण किया था। एक प्रश्न के उत्तर मे मैने एक दिन एक एक मकान का उदाहरण देकर स्पष्ट किया था कि किसी भाई के लडकी की शादी ६ महीने बाद होने वाली है जिसके लिये बड़े मकान की आवश्यकता पड़ेगी। उन्होने इस दृष्टि से एक बडा मकान ६ महिने पहले किरायेपर ले लिया और मध्यावधि में उसका परमार्थ आदि कार्यो मे सहज उपयोग कर लिया। किराया उसका पहले मे चालू था नया किराया नहीं लग रहा है।

इसी तरह से गृहस्थाश्रम में रहने वाले जितने भाई बहिन हैं, उनके आरंभ-समारंभ का त्याग नहीं है। सबको रेल में बैठने का त्याग नहीं है। रेल में बैठ रहे हैं तो पाप लग ही रहा है। आप व्यापार के लिये बम्बई आते हैं, वाहन काम में लेते ही हैं, उनका पाप लग ही रहा है, किसी जन्तु का पैरों से घात हो गया तो हिंसा तो लग ही रही है। साथ ही साथ यहा आकर संतों के दर्शन कर लिये तो यह आपको एकस्ट्रा [अतिरिक्त] लाभ मिल गया। कई लोग आते हैं, इसी प्रकार की

स्थिति होती हैं। घर में रहते हैं तो भी आरभ समारभ का पाप लगता है। आपको सत बुलाते नहीं है आप अपनी इच्छा से आते हैं, दर्शन करते हैं, व्याख्यान सुनते हैं, धर्म ध्यान करते हैं। घर में रहते तो भी भोजन करते और यहा आते हैं, तो भी भोजन करते हैं। होटल या ढाबा में जाते हैं, तो वहा पर भी भोजन करते हैं - इसमें जो दोष लगता है वह सब जगह लगता है। सतो के दर्शन करने का एक्स्ट्रा लाभ मिल जाता है। और एकस्ट्रा पाप नहीं लगता। जिस तरह से मकान का एक्स्ट्रा किराया नहीं लगा।

तीर की अणि पर जो लोहजन्य पदार्थ है, उससे जिस शिकारी ने हिंसा की उसको तो पाप लगा ही, लेकिन पृथ्वी काय के जीवों की आसक्ति उस लोहपिंड मे थी, इसलिये उन जीवों को भी पाप लगता है। चाहे कितने ही भव बीत गये हों। यदि अन्य जन्मों की हिंसा का त्याग कर लिया है तो पाप से बच जाते हैं। वर्तमान की हिंसा का कार्य चालू रहता है। रसोई आप नहीं बनाते हैं बहिने बनाती है तो उनको पाप लगना चाहिये आपको क्यों लगे। किन्तु आपको इसलिये लगता है कि आप उसमें भागीदार हैं। जितना समक्ष पूर्वक त्याग करेंगे उतना छुटकारा मिलेगा।

